सुपरिण्टेण्डेण्ट हैं। इस मुख्य सभा के, इस समय, लाला देवराज, रईस, सभापति हैं; लाला बदरीदास, एम० ए०, वकील, मन्त्री हैं; लाला रामकृष्ण, वकील, विद्यालय के प्रबन्धकर्ता हैं; और लाला सन्तराम, नार्मल स्कूल के हेड माष्टर, बोर्डिङ्ग हाउस के प्रबन्धकर्ता हैं। इस विद्यालय से लाला देवराज का बहुतही घनिष्ट सम्बन्ध है; वही उसका जीवन हैं; उसकी उत्तरोत्तर उन्नति के लिए वे सदैव सचेष्ट रहते हैं। दूसरे कार्यकर्ता भी बड़े उत्साह के साथ अपना अपना काम करते हैं और विद्यालय को लाभ पहुंचाने में ख़ूब तत्परता दिखाते हैं।

जालन्धर के रईस चौधरी भागमल की लड़की इसी विद्यालय में पढ़ती थी। उसकी शिक्षा से प्रसन्न होकर चौधरी साहब ने उसे कुछ पुरस्कार देना चाहा। लड़की से उन्होंने पूछा कि परमेश्वरी, तुझे क्या चाहिए। आप जानते हैं, लड़की ने क्या माँगा? कपड़े, ज़ेवर या अपने काम की और कोई चीज़ उसने नहीं माँगी। माँगी उसने विद्यालय की इमारत के लिए ज़मीन! चौधरी साहब ने इसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया और इमारत के लिए काफी ज़मीन दे दी। अब रुपये की ज़रूरत पड़ी। बहुत सा रुपया भी एक लड़की ही की कृपा से मिला। गुरुदासपुर की पार्वती बाई ने ८००) रुपये भेजे और धीरे धीरे और भी रुपया भेजकर विद्यालय के मकान का कुल ख़र्च अपनी तरफ़ से देने का उसने वचन दिया। श्रीमती पार्वती ने भी इसी विद्यालय में शिक्षा पाई है। इस समय विद्यालय की इमारत कोई १० ०००) रुपये की लागत की हो गई है। लड़कियों के इस विद्याप्रेम, देशहित और समाज की मङ्गलाकांक्षा से पुरुषों को सबक़ सीखना चाहिए। इस प्रकार इस विद्यालय का मकान तो निज का हो गया है; पर इसका बोर्डिङ्ग हाउस अभी तक किराये के ही मकान में है। लड़कियों पर इस पाठशाला की शिक्षा का विलक्षण असर पड़ता है। हम देखते हैं कि श्रीमती सावित्री, श्रीमती पार्वती, श्रीमती सरस्वती और श्रीमती गोमती आदि लड़कियां, शिक्षा समाप्त करने पर, इसीमें अध्यापिका का काम करने लगती हैं और इसके परिवर्तन में एक कौड़ी भी वेतन नहीं लेतीं। कितनी ही लड़कियां विवाह हो जाने पर यद्यपि अध्ययन-अध्यापन छोड़ने को विवश हो जाती हैं, पर विद्यालय छोड़ने पर भी वे उसे नहीं भूलतीं और यथाशक्ति उसकी सहायता किया करती हैं।

दस अध्यापक और अध्यापिकाओं के सिवा इस विद्यालय में एक ऐसी भी स्त्री हैं जो पहली और दूसरी जमात की लड़कियों को, मिट्टी की चीज़ें बना कर, उनके द्वारा शिक्षा देती हैं। विद्यालय के अधिकारी पदार्थ-विज्ञान की भी शिक्षा देने का विचार कर रहे हैं। आवश्यक यन्त्र मँगा लिये गये हैं। योग्य अध्यापक मिलने पर इस प्रकार की शिक्षा भी आरम्भ हो जायगी। एक छोटी सी विचित्र-शाला, अर्थात् पदार्थ-संग्रह, भी यहां है। उसकी सहायता से किंडरगार्टन प्रणाली के अनुसार शिक्षा दी जाती है और पदार्थों का परिचय भी नमूने दिखलाकर कराया जाता है। इस तरह वैज्ञानिक पाठ पढ़ाने में बड़ी सुबिधा होती है। इस पाठशाला की लड़कियों को शान्ति-पाठ, स्वस्तिवाचन और पुरुष-सूक्त भी पढ़ाये जाते हैं। वे शिखरिणी छन्द को शुद्धता पूर्वक बिना यतिभंग के पढ़ सकती हैं। संगीत-शास्त्र में भी शिक्षा दी जाती है; सीना पिरोना भी सिखलाया जाता है; अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थ—मिठाई और खटाई इत्यादि—का बनाना भी सिखलाया जाता है; शरीर-रक्षा, और आवश्यक चिकित्सा-सम्बन्धी पाठ भी दिये जाते हैं। इस विद्यालय की लड़कियों के योग्य कुछ पाठ्य पुस्तकें भी तैयार हो गई हैं और शेष के तैयार कराने का प्रबन्ध जारी है। एक बाला-समाज भी है। हर बुधवार को उसमें लड़कियां इकट्ठा होती हैं और उपयोगी विषयों पर बात चीत करती हैं। प्रसिद्ध पुरुषों के जीवन-चरित, लाभदायक कहानियां और उपदेशपूर्ण कवितायें भी लड़कियों को

सिखलाई जाती हैं। हफ्ते में एक बार कविता-पाठ होता है। उस समय लड़कियों के दो भाग कर दिये जाते हैं। तब कण्ठ किये हुए छन्दों का पाठ आरम्भ होता है और एक भाग दूसरे को हराने की कोशिश करता है। कहते कहते जिसके पास कविता की सामग्री ख़तम हो जाती है उसकी हार समझी जाती है। विद्यालय की लड़कियों के हाथ की बनाई हुई चीज़ें प्रदर्शिनियों में भेजी जाती हैं। १९०३ में पञ्जाब के शिक्षा-विभाग ने जो प्रदर्शिनी की थी उसमें इस विद्यालय को दूसरे दरजे का सरटिफिकट मिला था।

इस विद्यालय में पांच वज़ीफ़े हैं। तीन वज़ीफ़े तीन स्त्रियां देती हैं और दो वज़ीफ़े दो पुरुष। एक वज़ीफ़ा तीन रुपये महीने का है; शेष चार दो दो रुपये महीने के। सब से ऊंचे दरजे की जो लड़की संस्कृत की परीक्षा में सबसे अच्छी रहती है, उसे राय बहादुर पोहलूमल एक सोने का पदक हर साल देते हैं। एक चांदी का पदक भी हर साल एक सज्जन अपनी पत्नी की यादगार में देते हैं। कोई १००) रुपये की क़ीमत की चीज़ें हर साल लड़कियों को इनाम में दी जाती हैं।

यह कन्या-महाविद्यालय एक और उत्तम काम करता है। इसकी लड़कियां अध्यापिकाओं का काम करने योग्य हो जाती हैं। गत सात वर्ष में २५ लड़कियां ऐसी निकली हैं जिनमें से कई इसी विद्यालय में अध्यापिका का काम कर रही हैं; कई ने अपने अपने घर पर पाठशालायें खोली हैं; और कई बिजनौर, वज़ीराबाद, मुज़फ्फ़रनगर और जम्मू आदि की पाठशालाओं में अध्यापिका नियत हो कर लड़कियों को शिक्षा दे रही हैं। श्रीमती कर्म्म-देवी और श्रीमती सावित्री इसी विद्यालय की पढ़ी हुई हैं। विवाह हो जाने के कारण पहली लड़की को तो दो तीन वर्ष तक विद्यालय में अध्यापिका का काम करने पर उसे छोड़ना पड़ा; पर सावित्री अभी तक, बड़ी योग्यता से, अध्यापन का काम कर रही हैं।

इस विद्यालय से एक हिन्दी मासिक पत्रिका भी निकलती है। उसका नाम पाञ्चाल-पण्डिता है। लाला देवराज उसके सम्पादक हैं और श्रीमती सावित्री बाई सहायक सम्पादक। विद्यालय की लड़कियां भी इसमें लेख लिखती हैं। इस विद्यालय ने एक छोटा सा पुस्तकालय भी खोल रक्खा है और स्त्रियों के पढ़ाने लायक़ पुस्तकों के रखने और उनके बेचने का भी इसने प्रबन्ध किया है।

एक बात इस विद्यालय में बहुत अच्छी है। वह इसका आश्रम अर्थात् बोर्डिङ्ग हाउस है। इस समय इसमें ४० के क़रीब लड़कियां हैं। श्रीमती सुभद्रा देवी आश्रम की लेडी सुपरिण्टेण्डेण्ट हैं। वे आश्रम की लड़कियों को सदाचरणशीला बनाने, उनको सब तरह का आराम पहुंचाने और उनके अध्ययन में किसी प्रकार का व्यत्यय न आने देने के लिए वे दिल से कोशिश करती हैं। दूर दूर की लड़कियां यहां रहती हैं। उनके खाने पीने और दवा पानी का यहां बहुत अच्छा प्रबन्ध है। एक अनाथालय भी यहां है। उसमें अनाथ बालिकाओं का भरण-पोषण होता है और उनको विद्यालय में शिक्षा दी जाती है।

इस विद्यालय को देखकर अनेक प्रतिष्ठित पुरुषों ने प्रसन्नता प्रकट की है। पञ्जाब के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर, स्कूलों के इन्स्पेक्टर लाला नन्दकिशोर, असिस्टण्ट कमिश्नर लाला टेकचन्द और लेडी हरनामसिंह इत्यादि की दी हुई सरटीफिकटें पढ़कर तबीयत ख़ुश हो जाती है और लाला देवराज की शतमुख से प्रशंसा करने को जी चाहता है। विद्यालय के काम और प्रबन्ध की लफ़्टिनेण्ट गवर्नर तक ने प्रशंसा की है।

कन्या-महाविद्यालय का मूल धन रु० २५,९८४-९-० है। १९०३-०४ में रु० ४,३०७-४-० की आय हुई और रु० २,२७१-१५-६ व्यय हुआ। जो काम यह विद्यालय कर रहा है और जो वह करना चाहता है उसके लिए अधिक रुपया दरकार है। स्त्री-शिक्षा के हितैषियों को चाहिए कि यथा-शक्ति वे उसकी



१ २ ३

१. श्रीमतो सुभद्राबाई,
सुपरिंटेण्डेण्ट, कन्या-आश्रम (बोर्डिङ्ग-हाउस)

२. श्रीमती काहनदेवी,
लाला देवराज की माँ।

३. श्रीमती सावित्री देवो,
पाञ्चालपण्डिता की सहायक-सम्पादिका।

कन्या-अनाथालय, जालन्धर।

१	२	३
श्रीमती सुन्दरी देवी [लाला-देवराज की पत्नी] अनाथालय की दूसरी अवैतनिक सुपरिंटेण्डेण्ट।	**लाला देवराज** अनाथालय के अधिष्ठाता।	**श्रीमती सुभद्रा देवी,** अनाथालय की अवैतनिक सुपरिंटेण्डेण्ट।

१ २ ३



सहायता करें। क्योंकि उसका अस्तित्व दान ही पर अवलम्बित है और विद्यादान सब दानों से श्रेष्ठ है।

महाराजा सूरजसिंह और बादलसिंह की लड़ाई।

संसार में यह बात प्रत्यक्ष देखने में आती है कि यदि कोई आदमी निर्बल हो जाता है तो और लोग उसको पद-च्युत कर उसके स्थान को छीन लेने के लिए तत्पर हो जाते हैं। यह दोष केवल मानुषी ही नहीं किन्तु प्राकृतिक भी प्रतीत होता है।

इस साल, पृथ्वी पर, ठाकुर जाड़ासिंह का प्रचण्ड कोप देखकर, मनुष्यों को भय हुआ। इस का कारण जानने की परम उत्कण्ठा हुई। किसी ज्योतिषी ने यह स्थिर किया कि महाराजा सूरज-सिंह इस साल रोगग्रस्त हैं। उनके तप्त-काञ्चन तुल्य शरीर में एक बहुत बड़ा घाव हो गया है! मनुष्य प्रतिदिन अपने कार्य्य से निवृत्त होकर आराम करता है। तब भी वह कभी न कभी रोगी हो जाता है। देवता तक सदा छुट्टी लेकर अपनी अपनी देवाङ्गनाओं के साथ विहार करते हैं। विष्णु भगवान तो प्रतिवर्ष चार मास की "प्रिवि-लेज़ लीव" (रियायती छुट्टी) लेकर, हिन्दुस्तान के बड़े बड़े अँगरेज़ अफ़सरों की तरह, अपने स्वास्थ्य-भवन क्षीरसागर को वायुपरिवर्तन के निमित्त चले जाते हैं।

परन्तु हमारे महाराजा सूरजसिंह को एक दिन की भी छुट्टी मिलनी दुस्तर है। तिस पर न कहीं आना न जाना। एक जगह बैठे बैठे यदि वे रोगग्रस्त हो जाँय तो कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। फिर भी उनके असीम साहस को तो देखिये, कि रोगी होकर भी आप अपने काम में लगे रहते हैं। यह नहीं कि दो चार महीने की "मेडिकल लीव" लेकर किसी अच्छे स्वास्थ्यसम्पन्न स्थान को चले जायँ।

परन्तु, नहीं, प्रथम तो यदि वे छुट्टी पर जायँ तो उनके कठिन कार्य्य का भार किसको दिया जाय। द्वितीय यह कि उस सच्चिदानन्द परमेश्वर के राज्य में ऐसा अन्याय नहीं होता कि किसी अयोग्य पुरुष को अनुचित अधिकार दिया जाय और वह मनमाना न्याय करके कुछ का कुछ कर डाले।

महाराज सूरजसिंह को पीड़ित देखकर, राजा बादलसिंह ने उनके अटल अधिकार को छीन लेने की इच्छा से अपने "कमाण्डर-इन-चीफ़" ठाकुर जाड़ासिंह को आगे भेज दिया। पीछे अपनी सेना एकत्र कर आपने जहां तहां अपने डेरे डाल दिये और पानी, ओले, बजरी इत्यादि के रूप में आपने गोले-गोलियां बरसाना आरम्भ कर दिया। परन्तु सूरज-सिंह महाराज के केवल मुसकुराने ही से अपने को पराजित जानकर उसने राजा हिमराज से सहायता माँगी। उन्होंने भी "गहरी रक़म" मारने के लालच से ३।४ मास के अन्तर में १५।१६ सेनायें "ग्रेट कोल्ड आरमी कोर" (Great cold army corps) को भेज दीं। उनमें से कुछ सेनाओं ने ७।८ मार्च को बड़े वेग से धावा किया। हिमराज ने जिन देश-देशान्तरों में शाप के कारण स्वयं-जाना अयोग्य समझा, वहां उन्होंने अपने भाई तुषार, उर्फ़ पालाराम, को भेज दिया। इन्होंने भी जहां तहां पिण्डारियों की तरह भूमि को ख़ूब मरुस्थल बनाया।

अब सूरज महाराज की सहायता को वसन्त-सिंह और ग्रीष्मराज को आया देखकर हिमराज और पालाराम कुछ शिथिल हो गये हैं। परन्तु बादलसिंह रूस की तरह अपनी हठ को अब तक नहीं छोड़ते।

इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि यदि दो राज्यों में लड़ाई होती है तो प्रजा को असहनीय कष्ट भोगना पड़ता है। उदाहरण के लिए पाठकों को

रूस और जापान के घोर संग्राम का हृदय-विदारी वृत्तान्त विदित ही है। रूस में जैसे अनर्थ और उपद्रव हो रहे हैं वे भी छिपे नहीं हैं। इसी प्रकार सूरजसिंह और बादलसिंह की लड़ाई से प्रजा को दारुण कष्ट हुआ है। कृषिकारों में हाहाकार मच गया है। दुर्भिक्ष की सम्भावना प्रतीत होती है।

अन्त में, वर्तमान रूस व जापान के युद्ध के समान इस युद्ध की भी शीघ्र शान्ति न होते देख कर, हम परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह इन दोनों नरेशों के बीच मध्यस्थ होकर उचित न्याय कर दे।

परन्तु बादलसिंह ने जो पूर्ण अधिकार पाने के लिए युद्ध किया है वह हमको मंज़ूर नहीं है। क्योंकि यद्यपि हमको महाराज सूरजसिंह के कठिन राज्य में कभी कभी दुःख भोगने पड़ते हैं, तथापि वे न्यायी राजा हैं। पर बादलसिंह के सार्वकालीन राजा होने में बड़ा ही अन्धेर हो जायगा। उनका अनुशासन चार ही मास के लिए बस है।

हे सूरज महाराज! मैं आपके समीप आपके समाचार जानने के निमित्त आने को असमर्थ हूं। क्योंकि आपके देश जाने के लिए उचित सवारी नहीं मिल सकती। इससे ईश्वर से नम्रतापूर्वक यही प्रार्थना है कि वह आपको शीघ्र आरोग्य प्रदान करे जिसमें आप स्वयं अपने शत्रु को पराजित करने में समर्थ हों और अपने यथापूर्व दर्शनों से प्रजा के मुरझाये हुए हृदय-कमल को आल्हादित करें!

बदरीदत्त पांडे।

युधिष्ठिर का समय।

गत वर्ष एप्रिल की सरस्वती में वराहमिहिर के विषय में मेरा एक लेख निकला था। उसमें प्रसङ्गागत युधिष्ठिर का समय भी संक्षेप से लिखा गया था। परन्तु उस समय, कई कारणों से, वह लेख जल्दी में पूरा करना पड़ा, और अनवधान से युधिष्ठिर का समय अशुद्ध लिख गया। उसके प्रकाशित हो जाने के बाद मुझे बहुत अफ़सोस हुआ, और एक स्वतन्त्र लेख लिखने की इच्छा हुई, पर वह इच्छा आज तक न पूरी होने पाई। युधिष्ठिर के समय में बड़े बड़े विवाद उपस्थित हैं, देशी किंवा विदेशी पुरातत्ववेत्ताओं के मत भिन्न भिन्न संदेहों से भरे हुये हैं। इसके कई कारणों में मुख्य कारण यही है कि महाभारत और विष्णुपुराण आदि में, जो उस समय की ग्रहस्थिति लिखी है, उसमें सूक्ष्म-दृष्टि से विचार करने में बहुत अन्तर मालूम होता है। फिर भी मैं यह नहीं कह सकता कि ग्रहगति के विषय में लोगों को आज कल जितना ज्ञान है, उतना ज्ञान महाभारत के समय में भी रहा होगा। आज कल के विदेशी पुरातत्वज्ञों का यह भी मत है कि सम्पूर्ण महाभारत एक समय का बना नहीं है, और न एक ग्रन्थकार का ही है। इसके सत्यासत्य के विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता। यदि यह सत्य है तो सम्भव है कि महाभारत में बहुत कुछ उलट पुलट हो गया है। इस दशा में यह भी कहना पड़ेगा कि उसकी सभी बातें श्रद्धास्पद नहीं हो सकतीं। तोभी डूबते हुए को तिनके का सहारा भी बहुत होता है। जो ग्रहस्थिति, वर्तमान समय में, पुरानी लिखी हुई उपलब्ध होती है, वही, बाहरी प्रमाणों की अपेक्षा, टटोलने में बहुत कुछ उपयोगी मानी जा सकती है। और, आज तक, जिन लोगों ने युधिष्ठिर का समय टटोलने का श्रम उठाया है उन सभी ने महाभारत में लिखे हुए प्रमाणों को ही मूल मानकर अपनी अपनी अकल दौड़ाई है। परन्तु मज़ा यह है कि उन्हीं प्रमाणों के सहारे चलनेवालों में बड़ा मतभेद है। उनकी एक-वाक्यता करना कठिन काम है। तथापि यहां पर कुछ लोगों के मत संक्षेप से लिखकर, अपना मत मैं पीछे लिखूंगा। इस समय किसी के मत की आलोचना करना भी उचित नहीं है, क्योंकि सभी के मत परस्पर आलोचित ही हो रहे हैं।

बङ्गदेश में बङ्किमचन्द्र नामक एक बड़े प्रतिष्ठित लेखक हो चुके हैं। विष्णुपुराण के आधार पर उनका मत यह है—

"यावत्परीक्षितो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम्।
एतद्वर्षसहस्रन्तु ज्ञेयं पञ्चदशोत्तरम् ॥"

महापद्मः तत्पुत्राश्च एकवर्षशतमवनीपतयो भविष्यन्ति।
नवैव तान् नन्दान् कौटिल्यो ब्राह्मणः समुद्धरिष्यति।
तेषामभावे मौर्य्याश्च पृथ्वीं भोक्ष्यन्ति।
कौटिल्य एव चन्द्रगुप्तं राज्येऽभिषेक्ष्यति ॥" अर्थ—

महापद्म और उसके पुत्रगण सौ वर्ष राज्य करेंगे। कौटिल्य नामक ब्राह्मण नन्दवंशियों को नष्ट करेगा। उनके अभाव में मौर्य्यगण राज्य भोग करेंगे। कौटिल्य ही चन्द्रगुप्त को राज्याभिषिक्त करेगा। इस तरह युधिष्ठिर से लेकर चन्द्रगुप्त तक १११५ वर्ष हुये। "चन्द्रगुप्त विख्यात राजा था। वह और मासिडन का अलकज़ाण्डर समसामयिक थे। अलकज़ाण्डर ने प्रथम ३२५ ईसवी में भारतवर्ष पर आक्रमण किया था और चन्द्रगुप्त ने ३१५ ईसवी में राज्याधिकार पाया था। इसलिए ३१५ उक्त १११५ में जोड़ देने से ३१५+१११५=१४३० वर्ष ईसाके पहले महाभारत-युद्ध के सिद्ध होते हैं। और पुराणों में भी इसी प्रकार की कथा है। मत्स्य और वायुपुराण में उक्त १११५ के स्थान में ११५० वर्ष लिखे हैं। इस तरह महाभारत हुए १४६५ वर्ष होते हैं। विष्णुपुराण से जो १४३० वर्ष होते हैं, यही ठीक मालूम होता है।" यह बङ्किमचन्द्र का मत है। इसके सिवा उन्होंने और भी कई युक्तियों, तथा ज्योतिष से, भी महाभारत का समय सिद्ध करने की चेष्टा की है। पर उसमें उन को सन्तोष नहीं हुआ। इसलिए उनके मन्तव्य मात्र को मैंने यहां लिख दिया है। जिनको इच्छा हो वे उनके कृष्णचरित्र में सब बातें देख सकते हैं। उस में पृष्ठ १९ से २७ तक यह विषय है।

बम्बई में एक "हिन्दू-यूनियन क्लब" है। उसमें आजकल के विचारदक्ष पुरुष भिन्न भिन्न विषयों पर वक्तृता दिया करते हैं। उसी सभा में सन् १८८७ की १७ फ़ेब्रुअरी को एक सुप्रसिद्ध वक्ता, लेखक और ज्योतिषी श्रीयुक्त जनार्दन बालाजी मोड़क, बी० ए०, ने महाभारत युद्ध के समय के विषय में एक प्रबन्ध मराठी में पढ़ा था। उसके कुछ अंश का अनुवाद नीचे दिया जाता है—

"भारत-युद्ध-काल में मङ्गल, बृहस्पति और चन्द्र आदि ग्रहों की अवस्थिति के सम्बन्ध में, महाभारत में, इस प्रकार की उक्तियां हैं। जैसे—

(१) 'कृत्वा चाङ्गारको वक्रं ज्येष्ठायां मधुसूदन।
अनुराधां प्रार्थयति मैत्रं सङ्गमयन्निव ॥
उद्योगपर्व, १४३ अध्याय।

(२) मघा चाङ्गारको वक्रः श्रवणे च बृहस्पतिः।
भीष्मपर्व, ३ अध्याय।

(३) विशाखायाः समीपस्थौ बृहस्पतिशनैश्चरौ।
भीष्मपर्व, ३ अध्याय।

(४) मघाविषयगः सोमस्तद्दिनं प्रतिपद्यते।
भीष्मपर्व, १७ अध्याय।

इन चार श्लोकों में से पहले दो श्लोकों में मङ्गल की क्रम से ज्येष्ठा और मघा नक्षत्र में अवस्थिति वर्णित है। और दूसरे तथा तीसरे श्लोकों के अनुसार बृहस्पति यथाक्रम श्रवण और विशाखा नक्षत्र में अवस्थित थे। पहला श्लोक सन्धि करने के लिए आये हुए कर्ण की उक्ति श्रीकृष्ण से है। दूसरा श्लोक युद्ध के पहले ही व्यास की धृतराष्ट्र से उक्ति है। महाभारत के अनुसार कुरु-सभा से श्रीकृष्ण के लैाट आने पर २४वें दिन युद्धारम्भ हुआ है। इन २४ दिनों में मङ्गल का मघा नक्षत्र से ज्येष्ठा नक्षत्र, अर्थात् नौ नक्षत्र, या १२० अंश, गमन किसी प्रकार सम्भव नहीं है। क्योंकि मङ्गल की दैनिक गति प्रायः आध अंश मात्र है। बृहस्पति का श्रवण और विशाखा के समीप स्वाती नक्षत्र में अवस्थान व्यासजी ने कहा है। स्वाती से श्रवण १०७ अंश के अन्तर पर है, और बृहस्पति की गति का मान प्रति दिन प्रायः ९ कला है। सुतरां बृहस्पति का एक काल में स्वाती और श्रवण नक्षत्र में रहना

सम्भव नहीं है। पाठक पूछेंगे कि एकही काल में मङ्गल और वृहस्पति की, दो प्रकार की स्थिति, परस्पर दो दूरस्थ नक्षत्रों का अवस्थान लिख कर, बतलाने में क्या स्वतोविरोध नहीं उपस्थित हुआ? इन द्विविध अवस्थानबोधक श्लोकों की एक-वाक्यता कैसे सिद्ध हो सकती है? हमारी समझ में जिस समय एक काल में एकही ग्रह की दो भिन्न नक्षत्रों में स्थिति वर्णित है, उस समय एक नक्षत्र को तारात्मक और दूसरे को विभागात्मक नक्षत्र मान लेने से सब विरोध दूर हो जायगा। आकाश में क्रान्तिवृत्त (रविमार्ग) के उत्तर और दक्षिण कुछ तारापुञ्ज देख पड़ते हैं। इन तारा-समूहों का नाम नक्षत्र है। अश्विनी, भरणी आदि इनके नाम हैं। ज्योतिषशास्त्र में इन्हीं को तारात्मक नक्षत्र कहते हैं। ये तारागण परस्पर समान दूरी पर नहीं हैं। और न इनके आकार ही समान हैं। अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों में, रोहिणी, आर्द्रा, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, स्वाती, ज्येष्ठा और श्रवण इन आठ नक्षत्रों को योगतारायें ख़ूब प्रकाशमान हैं। सब नक्षत्र परस्पर समान दूरी पर नहीं हैं। इसलिए ज्योतिषियों के सुभीते के लिए क्रान्तिवृत्त के ३६० अंशों को २७ भागों में विभक्त करके उसके प्रत्येक भाग (अर्थात् १३ अंश २० कला) की नक्षत्र-संज्ञा कल्पना की गई है। इन नक्षत्रों को विभागात्मक नक्षत्र कहते हैं"।

इस तरह ज्योतिष सम्बन्धी बहुत सी बातें लिख कर मोड़क महाशय एक स्थान में लिखते हैं—"पर्व सङ्ग्रहाध्याय के लेखानुसार यद्यपि महाभारत युद्ध पांच हज़ार वर्ष की घटना जान पड़ती है, तौभी, उस युद्ध के आरम्भ काल में, ग्रहों की जैसी स्थिति महाभारत में लिखी है, उसके अनुसार वह कुछ अधिक सात हज़ार वर्ष पहले की सिद्ध होती है।" लेख के अन्त में आप फिर लिखते हैं—"पाठकों के सुभीते के लिये स्थूलरूप से भारत-युद्ध का काल निर्णीत हो चुका। सूक्ष्म रूप से गणना करने से शक के पहले ५३० वर्ष अर्थात् वर्तमान समय से ७१२२ वर्ष पहले भारत का युद्ध हुआ है। प्रोफ़ेसर केरो लक्ष्मण छत्रे ने इस गणना की विशुद्धता स्वीकृत की थी।" इस प्रकार लिखकर आपने शान्ति का अवलम्बन किया है।

शंकर बालकृष्ण दीक्षित नामक एक दक्षिणी ज्योतिषी अपने एक मराठी ग्रन्थ में महाभारत के प्रमाणों द्वारा इस काल की सविस्तर आलोचना में प्रवृत्त हुए थे। दीक्षित महाशय अब इस लोक में नहीं हैं, पर उनका विचार इस समय हमारे सम्मुख उपस्थित है। इस विचार में दीक्षित जी ने अनेक मतों की सविस्तर आलोचना की है, और सब को अशुद्ध ठहराया है। एक विसाजी रघुनाथ लेले हुए हैं। सुनते हैं उन्होंने इस काल के अनुसन्धान में बहुत परिश्रम किया था। दीक्षित जी ने उनकी उक्ति के हरएक पाराग्राफ़ का खण्डन किया है। उनका मत सुनिए—

"कर्ण और व्यास दोनों की उक्ति में ग्रहस्थिति है। उसमें कोई ग्रह दो दो नक्षत्रों पर कहे गये हैं। चन्द्र की स्थिति भी दो नक्षत्रों में कही गई है। युद्ध का आरम्भ जिस दिन हुआ है उस दिन चन्द्र की स्थिति इस प्रकार बतलाई गई है—

मघाविषयगः सोमस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत।

भीष्मपर्व, अ० १७।

युद्ध के अन्तिम, अर्थात् १८वें दिन, तीर्थयात्रा से बलराम आये। तब उन्होंने कहा—

चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्य वै।
पुष्येण संप्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः॥

गदापर्व, अ० ५।

इससे युद्धारम्भ के दिन रोहिणी किम्वा मृगशिर होता है। उनसे भारत-युद्धकाल की गणना में ग्रहों की स्थिति दो दो नक्षत्रों पर देखी जाती है। यथा—

चन्द्र—रोहिणी किंवा मृग और मघा।
मङ्गल—मघा और अनुराधा किंवा ज्येष्ठा।
गुरु—विशाखा के पास और श्रवण।

दो दो नक्षत्रों पर ग्रहों की स्थिति कही जाने से जान पड़ता है कि एक नक्षत्र सायन विभागात्मक और दूसरा निरयण विभागात्मक है"।

इत्यादि बहुत कुछ विचार करने के बाद, आपने सायन-निरयण-गणना के आधार पर, भारत के समय का वर्षमान आदि निकाला है और ग्रहस्पष्ट करके कई सङ्क्रांतियां बतलाने की चेष्टा की है। अन्त में आपने सब का फल यह निकाला है कि वर्तमान समय से ७१३२ वर्ष युद्ध हुए हो चुके। इस गणना करने में इनकी प्रवृत्ति का मुख्य कारण यह था कि ये सायन मत के पक्षपाती थे। इसी लिए रामायण, महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों में सायन पक्ष के प्रमाण ढूंढ़ने में इन्होंने जन्मभर जासूसी की। जहां कहीं सायनमतसाधक गणित का अंश देखने में आता तहां ये उसको झट गिरफ़ार कर लेते। अपने सिद्धान्तों को ये प्रायः सामयिक मराठी पत्रों में प्रकाशित किया करते थे। इन्होंने कोई ग्रन्थ नहीं लिखा कि उनकी सब बातें एक जगह देखने में आ सकें। महाभारत का समय भी इन्होंने सायन-गणना से ही किसी प्रकार सिद्ध किया है। मिस्टर दीक्षित ने बड़े अभिनिवेश से उसका खण्डन करके उसकी सब भूलें दिखलाई हैं।

बम्बई प्रान्त के प्रसिद्ध गणितज्ञ व्यंकटेश बापूजी केतकर 'आसन् मघासु मुनयः' इस वराहमिहिर के श्लोक का अर्थ यह करते हैं कि युधिष्ठिर शाक विक्रम के पहले २५२६वें वर्ष में चलता था। पाण्डव, शाक के पूर्व (२५२६+१३५=) २६६१ वर्ष में वर्तमान थे। शाक के पहले २६६२वें वर्ष में मार्गशीर्ष और पौष में, अर्थात् ईसवी सन् के पहले २५८५वें वर्ष में, नवम्बर की ८ तारीख़ से युद्ध शुरू हो कर २५वीं तारीख़ को समाप्त हुआ है। सारणी से उस समय के निरयण ग्रह भी इन्होंने सिद्ध किये हैं और नक्षत्रों की स्थिति भी दिखलाई है। परन्तु मिस्टर दीक्षित ने इसका भी भली भांति खण्डन किया है।

पूर्वोक्त दोनों महाशयों के गणित को, तथा प्रसङ्गागत और कई प्रमाणों की, आलोचना करते हुए दीक्षितजी ने अन्त में विष्णुपुराण के "यावत्परीक्षितो जन्म"—इस श्लोक के मत से ईसा के १४३१ वर्ष पहले पाण्डवों का काल निश्चित किया है। दीक्षित महाशय एक बहुत बड़े विचारशील गणितज्ञ हो गये हैं। उनकी आलोचना तथा ज्योतिष सम्बन्धी विषयों का निरूपण देखकर हर्षयुक्त आश्चर्य होता है। दक्षिण में, साम्प्रत काल में, ऐसा एक भी विद्वान् ज्योतिषी नहीं हुआ। दीक्षितजी ने इस युद्ध के विषय में अपना कोई मत स्पष्टरूप से नहीं लिखा। उन्होंने केवल इतना ही लिखा है कि अनुमान से शाक के पहले १५०० से लेकर ३००० वर्ष के बीच में पाण्डवों का काल मालूम होता है। वह इससे प्राचीन नहीं हो सकता।

पाठक, देखा, किस प्रकार महाभारत के प्रमाणों पर अटकलें लगाई गई हैं और भिन्न भिन्न काल निकाले गये हैं। इस दशा में किस विचारशील मनुष्य की श्रद्धा इन बातों पर हो सकती है? ऐसे ही और कई महानुभावों ने अपनी अपनी अटकल दौड़ाई है। पर कृतार्थ कोई नहीं हुए। आज कल के उपन्यासी तिलिस्म की तरह जिन बातों को मूल मानने से विचार के विस्तार का अन्त ही नहीं, उनकी उलझन में पड़ना भी व्यर्थ है। अस्तु।

स्वर्गीय डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र के मत से इस युद्ध का काल ईसा के पहले बीसवीं सदी है। और सुप्रसिद्ध दत्त महोदय के विचार से ईसा के १२५० वर्ष पहले है।

कुछ दिन हुए मद्रास-प्रान्त के वी. गोपाल आइयर, बी० ए०, बी० एल०, ने एक छोटा सा ग्रन्थ लिखा है। उसका नाम Chronologly of Ancient India है। इस ग्रन्थ के तीन भाग हैं। प्रथम में कलियुग के आरम्भ पर विचार किया है। दूसरे में महाभारत के युद्ध पर। और तीसरे में चारों युगों के प्रमाणों पर। इस पुस्तक के लिखने में उक्त महाशय ने बड़ी योग्यता दिखलाई

है। आधुनिक मत के विद्वान् जिस प्रकार विचारों को फैलाते हैं वह प्रकार इसमें ख़ूब देख पड़ता है। चाहे हमारे यहां के प्राचीन विचारों के विरुद्ध ही इसके मत क्यों न हों, पर मैं इस ग्रन्थ की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। पुस्तक बहुत उपादेय हुई है। इसमें नाना प्रमाणों के द्वारा युधिष्ठिर का समय लगभग ३००० वर्ष, और महाभारत बनने का समय ईसा के ११९३ वर्ष पहले, स्थिर किया है। इसकी सब बातें बहुत विचारपूर्वक लिखी गई हैं। इनको झटपट कोई खण्डन भी नहीं कर सकता। यह मत गत वर्ष के नवम्बर मास की सरस्वती के "विविध विषय" में भी संक्षेप से लिखा गया है। और वराहमिहिर की बृहत्संहिता के—

"आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्यराज्ञश्च"॥

इस श्लोक का अर्थ भी उक्त आइयर महाशय के मतानुसार वहां लिखा गया है। इसका अर्थ आप यों करते हैं। 'षड्द्विकपञ्चद्वियुतः' अर्थात् २६×२५ के गुणा करने से जो हो उसको बुद्ध के निर्वाण समय, अर्थात् ५४३ में, जोड़ देना चाहिए। क्योंकि इस श्लोक में 'शक' शब्द से गौतमबुद्ध का ग्रहण किया गया है। परन्तु यह भ्रममूलक है। इस श्लोक में 'शक' शब्द का अर्थ गौतमबुद्ध का कभी नहीं हो सकता; क्योंकि हमारे यहां के ज्योतिष ग्रन्थों में संवत् से विक्रम का और शक से शालिवाहन का ही शक लिया जाता है। और इसीके आधार पर अहर्गण आदि का गणित करके ग्रहों को ज्योतिषी स्पष्ट किया करते हैं। वराहमिहिर ने अपने 'पञ्चसिद्धान्तिका' नामक ग्रन्थ के आदि में ही अहर्गण साधने के विषय में लिखा है—'सप्ताश्विवेदसंख्यं शककालमपास्य' अर्थात् ४२७ शक को घटा कर गणित करना चाहिए। यदि यहां भी शक से गौतम का अर्थ लिया जाय तो कहिए गणित में कैसे एकवाक्यता हो सकती है? बृहत्संहिता के टीकाकार भट्टोत्पल, जो वराहमिहिर के चार सौ वर्ष पीछे हुए हैं, उक्त 'षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालः' का अर्थ लिखते हैं कि वर्तमान शक में २५२६ जोड़ देने से वर्तमान समय से लेकर युधिष्ठिर के गताब्द होते हैं। षट्द्विकपञ्चद्वि का अर्थ २५२६ है। इनके गुणन (अर्थात् २५×२६) का अर्थ जो आइयर महाशय ने किया है वह किसी प्रकार सम्भव नहीं है। न किसी ने टीका-टिप्पणी में ऐसा अर्थ ही लिखा है और न व्याकरण ही की रीति से २५ और २६ के गुणने का अर्थ किसी प्रकार सिद्ध हो सकता है। आइयर महाशय इस श्लोक की सङ्गति करने में भूले हैं। इससे उनका गौतम बुद्ध का समय भी अशुद्ध ही है। उक्त अङ्कों के गुणने का अर्थ, नहीं मालूम, उन्होंने कहां से निकाला है। उसे सुनकर आश्चर्य होता है।

गत फरवरी मास की सरस्वती में एक लेख "राजा युधिष्ठिर का काल" नामक पण्डित गणपति जानकी राम दुबे, बी० ए०, का निकला है। इस लेख में उक्त आइयर महाशय के निर्धारित युधिष्ठिर के काल को न मान कर विसाजी रघुनाथ लेले के (जिनके विषय में मैं ऊपर लिख आया हूं) मतानुसार यह दिखलाया गया है कि युधिष्ठिर वर्तमान समय से ७१३१ वर्ष पहले वर्तमान थे। आइयर के मत से युधिष्ठिर का काल जो ३००० वर्ष सिद्ध होता है, उस पर आपने बहुत अफ़सोस प्रकट किया है, और दुःख ही की बातों से अपने लेख का अर्धाधिक अंश पूर्ण किया है। परन्तु आइयर के मत का खण्डन आपने नहीं किया। इसका कारण नहीं मालूम पड़ता। लेले का मत संक्षेप से जो ऊपर लिखा गया है उसका खण्डन शंकर बाल कृष्ण दीक्षित ने किया है। पण्डित गणपति जी ने लेले के जिस गणित को अपने लेख में दिखलाया है उसका उल्लेख शंकर दीक्षित के ग्रन्थ में नहीं है। और न उसका खण्डन ही है। वह किसी इवली नामक स्थान के जैन मंदिर के शिलालेख से निकला है। शिलालेख के श्लोक यों लिखे गये हैं—

"त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः ।
३०+३०००=३०३० ;
सप्ताब्दशतयुक्तेषु शतेष्वब्देषु पञ्चसु ।
(७×१००)=७००+१००+५+
पञ्चाशत्सु कलौ काले, षट्सु पञ्चशतेषु च ।
५०=८५५　　　६+५००=५०६
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्" ॥

"इसमें तीन निराले कालों से मन्दिर के बनने का काल दिया गया है । पहला भारतीय युद्ध का ३०३०; दूसरा कलि का ८५५; और तीसरा शक जातीय राजाओं का ५०६ । इस अनुक्रम से यह बात स्पष्ट होती है कि कलि से २१७५ वर्ष पहले महाभारत का युद्ध हुआ था"। इस प्रकार लेले के गणित की व्याख्या करके कुछ दूर चलकर गणपति जी फिर लिखते हैं । 'इस काल-निर्णय में पण्डित लेले ने अपने आयुष्य के ४० वर्ष ख़र्च किये थे । इस गणित को राव बहादुर प्रो० केरो लक्ष्मण छत्रे ने, जो कि दक्षिण हिन्दुस्तान के बड़े गणितज्ञ थे, अपने प्रतिष्ठापत्र द्वारा ठीक बतलाया है । उन्होंने लिखा है कि शालिवाहन शक के ५३०६ वर्ष पहले पाण्डव थे । यह प्रतिष्ठापत्र १८९३ ई० का लिखा हुआ है । अर्थात् वर्तमान समय से ५३०६+१८२५=७१३१ वर्ष पहले पाण्डव और उनमें युधिष्ठिर प्रतिष्ठित थे ।"

पूर्वोक्त श्लोक का सम्बन्ध, अन्वय लगाने से, 'सप्ताब्दशतयुक्तेषु शतस्वब्देषु पञ्चसु' यहां पूरा होता है; और 'पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतेषु च' इसका एक सम्बन्ध होता है। इस हिसाब से पहले श्लोक में भारत युद्ध के गत वर्ष और दूसरे में शक के गत वर्ष निकलते हैं । अर्थात् जब ३७३५ कलि-वर्ष और ५५६ शक वर्ष बीत गये थे तब वह मन्दिर बना है । यह शिलालेख का मतलब है । पाठक, अब देखिये, इन श्लोकों का कैसा विलक्षण सम्बन्ध लेले महाशय ने किया है । आपने तीन प्रकार का समय अर्थात् ३०३० भारत युद्ध, ८५५ कलि और ५०६ शक सिद्ध किया है । जब मूल श्लोकों के हो अर्थ का अनर्थ किया गया है, तब उससे निकले हुए भारत समय का क्या ठिकाना है ? जो निकल आवे वही सही । शायद इन श्लोकों के विलक्षण अर्थ करने ही में लेले ने अपने आयुष्य के ४० वर्ष लगाये होंगे । क्योंकि लेले महाशय के इस टटोल का कोई ग्रन्थ तो है नहीं । और शङ्कर बालकृष्ण ने जो उन का मत लिखा है उसको देखने से तो यह नहीं मालूम होता कि इस गणित में लेले के ४० वर्ष क्या ४० दिन भी लगे हों । विचारने की बात है कि, लेले महाशय ने महाभारत, विष्णुपुराण तथा पूर्व-लिखित सब विचारकों के विचारों को उलांघ कर एक नये नख़रे से युधिष्ठिर के समय का फ़ैसला करना चाहा है । शिला लेखके इन श्लोकों से वास्तव में भारत का समय निकलता है; पर लेले महाशय उसे नहीं निकाल सके । आश्चर्य तो यह है कि पण्डित गणपतिजी ने इस गणित पर कैसे विश्वास कर लिया; क्योंकि गणित के विषय में बिना जाँच किये सहसा विश्वास कर लेने से बड़ी हानि होती है ।

जिस शिलालेख का ऊपर उल्लेख आया है वह दक्षिण के चालुक्यवंशी राजा पुलकेशी (दूसरे) के समय का है । वह दक्षिण में कलादगी ज़िले के एहोले की पहाड़ी पर बने हुए जैनमन्दिर में मिला है । उसको फ्लीट साहब ने इण्डियन आण्टिक्वेरी में प्रकाशित करके उसके पूर्व-लिखित श्लोकों के अर्थ की बड़ी भारी आलोचना की है । उन्होंने उनके अनेक प्रकार के अर्थ किये हैं । इन अर्थों में से लेले के अर्थ का ऐसा भी अर्थ हो सकता है । पर उसका खण्डन भी फ्लीट साहब ने किया है । अन्तमें उन्होंने वही अर्थ स्थिर किया है जो मैं लिख आया हूं । अर्थात् कलिके ३७३५ और शक के ५५६ वर्ष बीतने पर मन्दिर बना है । इण्डियन आण्टिक्वेरी में उक्त श्लोक जो रोमन में लिखे हैं, उनमें—

'सप्ताब्दशतयुक्तेषु श (ग) तेष्वब्देषु पञ्चसु'*।

* Vide, Indian Antiquary, Vol 8., p. 242.

इस प्रकार लिखा है। 'गतेषु' पाठ ठीक है। क्योंकि 'शतेषु' की सङ्गति कहीं नहीं लग सकती। और सम्भव है कि 'ग' ही 'श' के स्थान में शिलालेख में लिखा रहा हो। क्योंकि 'ग' भ्रामक होने पर वह शिलालेखों में प्रायः तालव्य शकार पढ़ा जा सकता है। अब—'त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु' के अनुसार क्रम से अङ्क हुए—

३०	और पञ्चाशत्सु कलौ—
३०००	के अनुसार—
७००	५००
५	५६
मन्दिर के कलिवर्ष=३७३५	मन्दिर के शकवर्ष=५५६

मन्दिर के कलिवर्ष, ३७३५ में, मन्दिर के शक वर्ष ५५६ घटाने से, ३१७९ बाक़ी बचे। अतएव ज्ञात हुआ कि शक के ३१७९ वर्ष पूर्व भारत युद्ध हुआ था। अब ३१७९ में वर्तमान शक१८२६ जोड़ देने से ५००५ होते हैं। वर्तमान कलि के गत वर्ष इतने ही हैं। यदि इनसे ईसा के वर्तमान वर्ष १९०५ घटा दें तो ईसा के पूर्व महाभारत का समय निकल आवेगा। इस प्रकार ५००५—१९०५ =३१०० वर्ष सिद्ध होते हैं।

इस तरह इस गणित से महाभारत का समय साफ़ निकल आता है और सब बातों की एकवाक्यता भी हो जाती है। इससे सिद्ध है कि द्वापर के अन्त में युद्ध हुआ और तभी (अर्थात् कलि के आदि से) युधिष्ठिर के जय पाने से उनका शक भी चलना प्रारम्भ हुआ। वृद्धगर्ग का वाक्य है कि 'कलिद्वापरसन्धौ तु स्थितास्ते पितृदैवतम्।' अर्थात् कलि और द्वापर की सन्धि में सप्तर्षि मघा नक्षत्र पर थे। इसी वाक्य को मूल मानकर वराहमिहिर ने अपनी बृहत्संहिता में लिखा है कि—"आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ" अर्थात् युधिष्ठिर के राज्यकाल में सप्तर्षि मघा नक्षत्र पर थे। परन्तु इस श्लोक में उस समय का युधिष्ठिर-शक जो २५२६ लिखा है, उसके अनुसार गणित करने से ६५३ वर्ष कलि के व्यतीत होने पर भारत का युद्ध मानना पड़ता है। वही युधिष्ठिर का भी समय है। इतने ही वर्ष के बाद राजतरङ्गिणीकार कल्हण ने भी भारत का युद्ध लिखा है। परन्तु उक्त वृद्धगर्ग के वाक्य के अनुसार, अर्थात् कलि के कुछ ही पहिले, जो समय निश्चित होता है वही ठीक* मालूम देता है। और शिलालेख के अनुसार भी गणित करने से उसकी एकवाक्यता होती है।

सप्तर्षि नक्षत्र अश्विनी से लेकर रेवती तक हर एक नक्षत्र पर सौ सौ वर्ष तक रहते हैं। इस तरह २७०० वर्ष में उनका एक चक्र पूरा होता है। इनका सौ सौ वर्ष तक हर नक्षत्र पर रहना पुराणों में भी लिखा है। यथा भागवत् में, "तयोस्तु मध्ये नक्षत्रं दृश्यते यत्समं निशि। तेनैते ऋषयो युक्ता

* वृद्ध गर्ग ने कहा कि द्वापर की सन्धि में सप्तर्षि मघा पर थे वह तो आप ठीक मानते हैं। पर विख्यात गणितज्ञ और ज्योतिषी वराह-मिहिर युधिष्ठिर का शक २५२६ लिखकर, महाभारत होने का समय ६५३ वर्ष कलि के व्यतीत होने पर जो बतलाते हैं और जिसकी पुष्टि कल्हण के समान विख्यात इतिहासकार करते हैं उसे आप ठीक नहीं मानते। क्यों? प्रमाण देना चाहिए था। प्रसिद्ध इतिहासकार और ज्योतिषियों की अपेक्षा एक अज्ञातनामा शिला-लेखक की बात पर क्यों अधिक श्रद्धा? इवल्ली के मन्दिर के बनने के समय महाभारत हुए कोई ४००० वर्ष के लगभग हो चुके थे। यह उसी के शिलालेख से सूचित है। इतनी पुरानी बात को शिला-लेखक ने ठीक ही लिखा—इसका क्या प्रमाण? कहां से उसे महाभारत का समय मिला? युगों की उमर लाखों वर्ष की है। वह एव द्वापर और कलि की सन्धि कुछ दो चार वर्ष की तो कही नहीं जा सकती। इससे गर्ग की उक्ति में समय की स्थूलता अधिक है; पर वराह-मिहिर की उक्ति में यह बात नहीं। उन्होंने समय के ठीक अङ्क दे दिये हैं। फिर वृद्ध-गर्ग की बात क्यों अधिक विश्वसनीय हुई? ये पुरानी ऐतिहासिक बातें ऐसी जटिल हैं कि उनकी एकवाक्यता करने में बड़ी बड़ी कठिनाइयां आती हैं। पं० गिरिजाप्रसादजी ने इस विषय पर ख़ूब विचार किया है। आशा है वे सब साधक बाधक प्रमाणों का विचार करके युधिष्ठिर के शक को फिर, किसी समय, निर्विवाद सिद्ध करेंगे।

सं० स०

स्तिष्ठन्त्यब्दशतं नृणाम्।" इन्हीं प्रमाणों के अनुसार वराहमिहिर ने लिखा है कि "एकैकस्मिन्नृक्षे शतं शतं ते चरन्ति ऋक्षाणाम्।" परन्तु हमारे यहां सिद्धान्तों में नक्षत्रों की स्वतः गति का अभाव लिखा है। इसीलिये सिद्धान्त-तत्व-विवेककार कमलाकर भट्ट इन सप्तर्षियों की गति का खण्डन करते हैं। कश्मीर में पहले सप्तर्षि संवत् चलता था। अतः वहां की हस्तलिखित पुस्तकों में, तथा प्राचीन पञ्चाङ्गों में, इसका लेख मिलता है। वहां इस संवत् का प्रारम्भ कलि के २५ वर्ष बीतने पर माना जाता है*।

अब मैं लेख को अधिक बढ़ाना नहीं चाहता। विचारशील पाठक समझ गये होंगे कि महाभारत के प्रमाणों को मूल मानकर जिन जिन महाशयों ने समय निर्णय किया है वे सब परस्पर विरुद्ध हैं। और "आसन् मघासु—," इस वचन से भी ठीक ठीक विश्वासयोग्य गणित नहीं होता। केवल पूर्वोक्त शिलालेख सेही विश्वासयोग्य समय निकलता है। परन्तु लेले महाशय के अनुसार पण्डित गणपति जानकीरामजी ने उसका जो विलक्षण अर्थ लिखा है वह कभी नहीं माना जा सकता। उक्त शिलालेख से ३७३५ कलि और ५५६ शक वर्ष फ्लीट साहब के लेखानुसार और मेरे भी विचार से निकलते हैं। वर्तमान काल में कलि के गत वर्ष ५००४ और शक १८२६ हैं। अब यदि उक्त मंदिर के कलि और शक वर्ष क्रम से वर्तमान में हम घटा दें तो शेष वर्तमान काल से मन्दिर के बनने का समय निकल आवैगा। पर दोनों में शेष अङ्क समान ही बचेंगे। यह गणित की युक्ति से सिद्ध है। और इसी से सत्यता की भी प्रतीति होती है। जैसा, ५००४—३७३५=१२६९। और १८२६—५५६=१२६९। दोनों तरह से एक ही अङ्क प्राप्त हुए, अर्थात् इस समय से मंदिर बने १२६९ वर्ष हो चुके।

इस गणना में १ अङ्क का अन्तर पड़ता है। अर्थात् शक जो ५५६ हैं उनमें ६* के स्थान में ७ मानने से दोनों स्थानों में तुल्य शेष बचता है। इसी प्रकार पंडित गणपति जी लिखित गत कलि ८५५ और गत शक ५०६ यदि वर्तमान कलि और वर्तमान शक में हम घटावें तौ भी बाकी तुल्य ही बचना चाहिए। परन्तु वैसा नहीं होता। देखिए—५००४—८५५ = ४१४९। और १८२६ —५०६=१३२०। शेष समान नहीं है। इस लिए गणित में प्रत्यक्ष विरोध होने से यह मत सर्वथा त्याज्य है। जब से बम्बई में पञ्चाङ्ग-सभा हुई है तभी से दक्षिण प्रान्त के ज्योतिषियों ने बड़ा हलचल मचा रक्खा है। सब लोग अपने अपने मतानुसार पञ्चाङ्ग-व्यवस्था लिख लिखकर अख़बारों में प्रकाशित करते हैं। एक महाशय ने सायन—निरयण की व्यवस्था मराठी में लिखी है। उसमें लेले के आविष्कृत रामायण और महाभारत के सायन समर्थक प्रमाण दिये गये हैं। और भारत युद्ध का काल भी, जो उक्त ग्रन्थों से ७।८ हज़ार वर्ष निकाला है गया, लिखा गया है। मतलब यह कि लेले महाशय का यह भ्रम शंकर बालकृष्ण दीक्षित को छोड़कर अभी तक और किसी के दिमाग़ में नहीं धँसा। इसलिए दक्षिणियों में लेले महाशय के गणित पर वेद-वाक्यों से भी बढ़कर श्रद्धा टपक रही है। इस अनर्थ का निवारण ईश्वर ही के आधीन है।

गिरिजाप्रसाद द्विवेदी।

* इस विषय का एक श्लोक मिलता है। जैसा—"कलेर्गतैः सायकनेत्र(२५) वर्षैः सप्तर्षिवर्यास्त्रिदिवं प्रयाताः। लोके हि संवत्सर-पत्रिकायां सप्तर्षिमानं प्रवदन्ति सन्तः"। See Dr Buhler's Kashmir Report, p. 60.

* यह जो १ का अन्तर रहता है वो क्यों? शायद शिलालेख ही में ग़लती हो; या पढ़नेवालों ने ग़लती की हो।

सं० स०

कविवर लछीराम।

अयोध्या के प्रसिद्ध कवि कवि-वर लछी-राम का नाम सरस्वती के पाठकों ने सुना होगा। सरस्वती के चौथे भाग की छठी संख्या के १९६ और १९७ पृष्ठों में कविवरजी का कुछ ज़िकर भी आ चुका है। कुछ दिन हुए इनका शरीरान्त हो गया। भादों बदी ११ मङ्गल, सम्वत् १९६१, को सरयू के किनारे अयोध्या में इन्होंने इस लोक से प्रस्थान कर दिया।

लछीरामजी ब्रह्मभट्ट थे। इनकी कविता पर प्रसन्न हो कर अयोध्या-नरेश महाराज मानसिंह ने इनको अपने यहां रख लिया। महाराज मानसिंह के न रहने पर वर्तमान अयोध्या-नरेश ने भी इनका पूर्ववत् आदर बना रक्खा। अतएव यह वहीं रहे। परन्तु यद्यपि यह अयोध्या-राज के कवि थे तथापि और और राज-दरबारों में भी यह जाया करते थे। बस्ती के राजा शीतलाबख्श ने चरथी नाम का एक गाँव, हाथी और वस्त्राभूषण इत्यादि देकर लछीरामजी का सत्कार किया था। मल्लापुर के राजा मुनीश्वरबख्शसिंह, रामपुर-मथुरा के राजा महेश्वरबख्शसिंह, और गिद्धौर के महाराज रावणेश्वर प्रसादसिंह भी इनका सम्मान करते थे; इनकी कविता सुनते थे; और समुचित बिदाई देते थे। महाराजा टीकमगढ़ (ओरछा) और महाराजा दरभङ्गा तक इनको मानते थे। श्रीनगर-नरेश श्रीमान् राजा कमलानन्दसिंह के पास लछीरामजी बुढ़ापे में गये थे। राजासाहब के नाम पर लछीरामजी ने जो "कमलानन्दकल्पतरु" नामक ग्रन्थ बनाया, उसका उल्लेख सरस्वती में हो चुका है। इस ग्रन्थ-रचना के उपलक्ष्य में कविराजजी को हज़ारों रुपये नक़द और बहुमूल्य वस्त्राभरण देकर श्रीनगर-नरेश ने अपनी उदारता और गुणग्रहणता दिखलाई।

कमलानन्दकल्पतरु के सिवा चरणचन्द्रिका, रामचन्द्रभूषण और सरयू-लहरी इत्यादि और भी कई ग्रन्थ इन्होंने बनाये हैं। ये पुरानी प्रथा के कवि थे। अलङ्कार-शास्त्र में ख़ूब प्रवीण थे। कविता भी इनकी बहुत अच्छी होती थी।

लछीरामजी अयोध्या में रहते थे। वहीं उन्होंने एक राम-मन्दिर बनवाया। कई कुवें उन्होंने खुदाये और कई बाग़ लगवाये। अपनी जाति के बहुत से लड़कों के पढ़ने का उन्होंने प्रबन्ध कर दिया। सुनते हैं एक आध पण्डित भी उन्होंने, इस लिए, रक्खे थे और एक पाठशाला भी खोली थी। इनके आठ नौ वर्ष का एक पुत्र है। वह और उसकी मां अयोध्या में हैं।

लछीरामजी के शिष्य यज्ञराज कवि ने अपने गुरु, कविवरजी, का एक फ़ोटो भेजा है और लछीरामजी के शोक में एक कविता भी भेजी है। कविवरजी के विषय में हमने ऊपर जो कुछ लिखा वह उसी कविता के आधार पर है। लछीरामजी के चित्र से मालूम होगा कि यद्यपि आप पुराने ढङ्ग के कवि थे, और पुराने ही ढङ्ग की पगड़ी पहनते और लाठी बाँधते थे, तथापि पुरानी चाल के जूतों की जगह आप नई चाल के बूट पहनते थे। नई चीज़ों से बूढ़े कविवर भी नहीं बचे।

अब हम यज्ञराज कवि की शोकप्रकाश नामक कविता का कुछ अंश नीचे देते हैं। जगह कम होने के कारण हम उनकी पूरी कविता को नहीं प्रकाशित कर सके। अतएव कविजी, इसके लिए, हमें कृपापूर्वक क्षमा करें।

श्री कविवर लछिराम हाय बैकुण्ठ सिधारे।
यज्ञराज तव शिष्य सुनत दुख लह्यो अपारे॥

बैठि गयो करि हाय कहूँ कछु सूझत नाहीँ।
किधौं साँच कै झूँठ हाय बूझौं क्यहि पाँहीँ॥

मुख तें कढ़ै न बैन नयन आँसू बह झर झर।
आवन लगी उसाँस गात काँपैं सब थरथर॥

हाय नहीँ मन धीर पीर उर असहन बाढ़ी।
भाँति भाँति की उठै चित्त मैं चिन्ता गाढ़ी॥

जीवन जानि अनित्य लह्यौ धीरज मन माहीं।
लच्छिराम को मरन सोचिबे लायक नाहीं॥

मरन सोचिबे योग जाहि मारै भुजङ्ग डँसि।
पावक जरि जल डूबि मरै विष खाय मारि असि॥

सुजश नाम बिख्यात नहीं जाको जग माहीं।
मानुष तन जो पाय सुकृत कीन्हों कछु नाहीं॥

यहि बिधि के सब जीव मरे पर जमपुर जाहीं।
इन सबको सुनि मरन साधु जन अति पछिताहीं॥

सरस सकल साहित्य ईस कबि ताहि पढ़ायौ।
रचना रुचिर कवित्त माँहिं बहु प्रेम बढ़ायौ॥

मानसिंह द्विजदेव जगत विख्यात अवधपति।
सुनि कवित्त दै दान रीझि सनमान कियौ अति॥

श्रीयुत सबगुन-धाम श्रीनगर को सिरताजा।
कमलानन्द सरोज सराहत सुकवि समाजा॥

बूढ़ेपन मैं मिल्यौ आय इनसों कविराजा।
करत बारतालाप दुहुन कों दोउ सुख साजा॥

भूपति कमलानन्द दान दीन्हों बहुतेरो।
अङ्कमालिका भेंटि कियौ सनमान घनेरो॥

एक एक रचि ग्रन्थ इते भूपन कौं दीन्हों।
दै कवित्त लै वित्त चित्त सबको हरि लीन्हों॥

गरजनि सिंह समान सभा मैं श्री कविवर की।
सुनत ससंकित सहमि कौन की मति नहि थरकी॥

रचना रुचिर कवित्त युक्ति साँचे मैं ढारयौ।
जनु रसिकन के हेतु मैन को बान सँवारयौ॥

अचल अवध के बीच राममन्दिर बनवायौ।
बन प्रमोद जहँ सोयराम अतिसै सुख पायौ॥

सदा औधपुर बास सुखद सरजू जल सेवा।
लषन राम सिय छोड़ि और दूसर नहिं देवा॥

प्रतापगढ़ (अवध) के भगवन्त कवि ने लछीरामजी की मृत्यु पर एक पद्य कहा है। उसे भी हम नीचे प्रकाशित करते हैं—

बंस निज सुत मैं प्रसंस जगतीके तल
　　रचनाशकति राखे शिष्यनि के हद मैं।
सूझि भगवन्त मैं सुबूझि कवि ज्ञानिन मैं
　　रीझि राखे नृपनि औ खीझ बैरी सद मैं॥
कवि लछिराम कीनी चातुरी चलत पती
　　बानी बरबानी ग्यान राखे वेद नद मैं।
धन राखै भौन मैं सुगुन सब सामुहे मैं
　　तन राखै चौकट औ मन राम पद मैं॥

अन्तःसाक्षित्व विद्या।

जिस विद्या के बल से आदमी दूसरे के दिल का हाल जान लेता है, जिसके बल से आदमी दूसरे के मन में—दूसरे के अन्तःकरण में—घुस सा जाता है, जिसके बल से आदमी गैब की बात जान जाता है, जिसके बल से आदमी भूत, भविष्य और वर्तमान को हस्तामलकवत् देखने लगता है, उसे अन्तःसाक्षित्व, अन्तर्ज्ञान या परोक्षदर्शन-विद्या कहते हैं। उसी का ही नाम इलमगैब है। पर वह है क्या चीज़? क्या वह विज्ञान है, या कला है, या एक तरह का पेशा है? कुछ भी हो, वह एक ऐसी अद्‌भुत शक्ति है जो बहुत कम आदमियों में पाई जाती है। वह ईश्वर का ऐसा अलौकिक प्रसाद है जो किसी बिरले ही पुण्यवान् पुरुष को मिलता है।

पुरानी पुस्तकों में लिखा है कि भारतवर्ष के प्राचीन ऋषि-मुनि त्रिकालदर्शी थे; योगि-जन अन्तर्ज्ञानी थे और अब भी जहां कहीं वे हैं दूसरे के दिल का हाल जान सकते हैं; हज़ारों कोस दूर होनेवाली घटनाओं का अनुभव कर सकते हैं; और भविष्यत् को अपनी हथेली पर रक्खा हुआ सा देख सकते हैं। परन्तु ऐसे उदाहरण विरल—बहुत ही विरल हैं। अधिकतर ऐसेही उदाहरणों को है जिन की परीक्षा करने से कपट, छल, धोखेबाज़ी और

किसी तरह पैसा कमाने की युक्ति के सिवा और कोई बात देखने में नहीं आती है।

कोई सात वर्ष हुए, तब हम झांसी में थे। वहां एक कम उम्र के पण्डित आये। आप योग-शास्त्री के नाम से प्रसिद्ध थे। शायद आप अब तक विद्यमान हैं और कहीं इसी तरफ़ के रहने-वाले हैं। झांसी में आप एक गवर्नमेण्ट पेन्शनर, बंगाली बाबू, के यहां ठहरे। आपकी विद्या की चर्चा खूब होने लगी। लोग आपके पास दौड़ दौड़ जाने लगे। बड़े बड़े वकील, डाकृर और मास्टरों के आपनी त्रिकालदर्शिता से आपने मोहित कर लिया। सब के प्रश्नों का उत्तर आप देने लगे और प्रायः सब लोग सन्तुष्ट, प्रसन्न और चकित हो हो कर आपके पास से लौटने लगे। फ़ीस आप की सिर्फ़ एक रुपया थी। हमको भी हमारे मित्रों ने योगशास्त्रीजी के दर्शन करने के लिए विवश किया। खैर, हम जाने के और पण्डितजी से कुछ पूछ कर कृतार्थ होने के भी राज़ी हुए।

एक दिन शाम के हमने अपने पण्डित श्रीयुक्त वासुदेव शास्त्री के साथ लिया। उनका कनिष्ठ पुत्र नारायण भी हम लोगों के साथ हुआ। योग-शास्त्रीजी के स्थान पर जब हम पहुँचे तब आप शौच गये थे। शौच से निपट कर आपने कटि-स्नान किया। तब आप हम लोगों के पास आये। आगत-स्वागत होने के बाद हमने आपकी संस्कृतविद्या की थाह लेने के इरादे से कुछ कहा। उसका उत्तर आप ने सिर्फ़ "अनुग्रह, अनुग्रह" के रूप में दिया। तब हमने, एक रुपया आप के हाथ में रक्खा और कहा कि हमारे विषय में आप कुछ कहिए। इस पर योग-शास्त्रीजी हमके मकान के भीतर, अपने आसन के पास, ले गये। परन्तु हमारे साथ वासुदेव शास्त्री और उनके चिरञ्जीव नारायण के लेजाने से आपने इनकार किया। हमने वासुदेव शास्त्री से कहा कि यह शर्त हम मंज़ूर किये लेते हैं। अगर हमके इन के अन्तःसाक्षित्व से सन्तोष हुआ ते आप हमारे बाद इनसे जो कुछ पूछना हो पूछ आइएगा। उन्होंने कहा हमें कुछ नहीं पूछना है; हम इनसे पहले ही से परिचित हो चुके हैं। अस्तु।

हम योगशास्त्रीजी के आसन के पास बैठे। वे कुछ ध्यानस्थ से हुए और हमारे भविष्य से सम्बन्ध रखनेवाली बातें कहने लगे। हमने सुनकर कहा कि आप पहले हमारे प्रश्नों का उत्तर देकर अपनी विद्या में हमारी श्रद्धा उत्पन्न करें। तब आप आगे होनेवाली बातें कहें। ऐसा करने से आपकी उक्तियों में हमें अधिक विश्वास होगा। इस पर वे किसी तरह राज़ी हुए। तब हमने फ़ारसी के—

चु अज़ क़ौमे यके बेदानिशी कर्द
न केहरा मन्ज़िलत मानद न मेहरा।

इस मिसरे के याद किया और कहा कि बत-लाइए हमारे मन में किस भाषा का कौन सा पद्य है। यह एक ऐसा पद्य था जो उन योगिराजजी पर भी विलक्षण तरह से घटित होता था। इसके हमने कई मिनट तक मनन किया, पर वे महात्मा इसे न बता सके। इस प्रश्न में वे बेतरह फ़ेल हुए। तब हमने उनसे ये प्रश्न किये—

(१) हमारे कितने विवाह हुए हैं ?
(२) हमारी कितनी स्त्रियां इस समय जीवित हैं ?
(३) हमारे सन्तति कितनी हुई—कितने लड़के, कितनी लड़कियां ?
(४) उस में से कितनी इस समय विद्यमान हैं ?

हज़ार प्रयत्न करने पर भी योगशास्त्रीजी इन प्रश्नों का ठीक ठीक उत्तर न दे सके। जब उनके उत्तर बहुत ही अण्ड बण्ड होने लगे, तब हमने उनसे कहा कि आपके इतने ही उत्तर काफ़ी हैं। और भी हमने कई प्रश्न किये, पर वे बराबर फ़ेलही होते गये। उस समय उनके मनकी क्या हालत हुई होगी यह ते वही जानते होंगे; पर अपने असामर्थ्य के प्रमाण में उन्होंने हमारा रुपया वापस कर दिया। हमारे बहुत कहने पर भी उन्होंने उसे न लिया। इस असामर्थ्य का कारण उन्होंने यह बतलाया कि आज

हमने सुबह से कई आदमियों के प्रश्नों का उत्तर दिया है; इससे हमारी अन्तर्ज्ञान-शक्ति क्षीण हो गई है। उन्होंने हमसे वादा किया कि उसी दिन रात के आठ बजे वे हमारे मकान पर पधारेंगे और हमारे जन्मपत्र को देख कर हमारे प्रश्नों का उत्तर देंगे। रात को ११ बजे तक हमने उनका रास्ता देखा। पर आप नहीं पधारे। दूसरे दिन सुबह हमको ख़बर मिली कि योगशास्त्रीजी महाराज रात को १२ बजे की रेल से भूपाल के लिए रवाना हो गये!

परन्तु सब की हालत ऐसी नहीं होती; सब की विद्या उत्तर देते देते क्षीण नहीं हो जाती। जो लोग थियासफ़ी-समाज की "थियासफ़िस्ट" नामक सामयिक पुस्तक के नियमित पढ़नेवाले हैं; जिन्होंने कम्बरलैण्ड साहब के दिखलाये हुए अन्तःसाक्षित्व-विद्या-सम्बन्धी चमत्कारों का वर्णन पढ़ा है; जिन्होंने अमेरिका के डाकृर डाड्स के अलौकिक कृत्यों को सुना है—वे जान सकते हैं, वे कह सकते हैं, वे विश्वास कर सकते हैं कि अन्तर्ज्ञान विद्या का इस भूमण्डल से बिलकुल ही लोप नहीं हो गया। अब भी उसके होने के प्रमाण कहीं कहीं मिलते हैं। परन्तु, हां, बहुत विरल मिलते हैं।

इस समय हिन्दुस्तान में भी इलम ग़ैब का जाननेवाला एक प्रसिद्ध पुरुष है। उसकी अन्तर्ज्ञानविद्या बहुत बढ़ी चढ़ी है। १८९२ ईसवी में यह पुरुष जीवित था। मालूम नहीं अब वह है या नहीं। उस समय उसकी उम्र सिर्फ़ ३५ वर्ष की थी। इससे कह सकते हैं कि वह बहुत करके अब तक ज़िन्दा होगा। अस्तु हम उसे ज़िन्दा ही समझ कर उसके विषय में दो चार बातें लिखते हैं।

इस पुरुष का नाम गोविन्द चेट्टी है। यह मदरास हाते के कुम्भकोण नगर से ६ मील पर वलिङ्गमन नामक गाँव में रहता है। कुम्भकोण, साउथ इण्डियन रेलवे का एक स्टेशन है। गोविन्द चेट्टी की मातृ-भाषा तामील है। वह संस्कृत भी थोड़ी जानता है। उस प्रान्त में उसका बड़ा नाम है। वह भूत, भविष्य और वर्तमान को सामने रक्खा हुआ देखता है। अर्थात् वह त्रिकालज्ञ है। एक बार उसके विषय में "थियासफ़िस्ट" में एक लेख छपा था; उसमें उसके बतलाये हुए अनेक अद्भुत उत्तरों का ज़िकर था। कर्नल पीकाक नामक एक साहब एक दिन उससे मिलने गये। वे उसकी अद्भुत विद्या को देखकर अवाक्, चकित और स्तम्भित हो गये। उन्होंने "मदरास मेल" नामक अङ्गरेज़ी समाचार पत्र में अपने अनुभव का सविस्तर वृत्तान्त प्रकाशित किया है। उसकी नक़ल और भी कई अख़बारों में छप चुकी है। मदरास हाते के उत्तरी विद्या-विभाग के इन्स्पेकृर ने भी गोविन्द चेट्टी से मिलकर जिन अचम्भे की और अलौकिक बातों का अनुभव किया है उनका वर्णन उन्होंने भी छपा दिया है।

इस अद्भुत ज्योतिषी, अन्तर्ज्ञानी या योगशास्त्री से मिलने, एक बार, एक महाराष्ट्र पण्डित गये। वे सिर्फ़ इसी निमित्त, कोई ५०० मील दूर अपने घर से, वहां पहुँचे। जाने के पहले उन्होंने उससे पूछने के लिए अपनी डायरी में बहुत से प्रश्न लिख लिये। जब वे गोविन्द चेट्टी के घर पहुँचे तब उन्होंने देखा कि उसके यहां कई आदमी, सैकड़ों तरह के प्रश्न करने के लिए, बैठे हैं। वे अपने साथ एक दुभाषिये को ले गये थे। वह तामीलभाषा का अनुवाद अङ्गरेज़ी में और अङ्गरेज़ी का तामील में करता था। गोविन्द चेट्टी का रंग काला, शरीर सशक्त, मोंछ विरल थे। वह सिर्फ़ धोती पहने था और एक अँगौछा कन्धे पर रक्खे था। उसकी बात चीत और मुखचर्य्या से मालूम हुआ कि वह बहुत क्रोधी भी है और लोभी भी है। जो लोग वहां जमा थे उनमें से जिस ने उसको ख़ातिरख़ाह रुपया नहीं दिया उसे उसने अपने कमरे से निकल जाने को कहा और उसके प्रश्नों का उसने उत्तर नहीं दिया।

जब इस महाराष्ट्र पण्डित की बारी आई तब इससे गोविन्द चेट्टी ने पूछा कि तुम कहाँ से आये

और क्या चाहते हो। इसका उत्तर मिलने पर उसने कहा कि यदि मैं तुम्हारी सब बातों का ठीक ठीक जवाब दूं तो तुम मुझे क्या दोगे? महाराष्ट्र गृहस्थ ने कहा कि यदि आप ऐसा करेंगे तो मैं आपकी कीर्ति को महाराष्ट्र देश भर में फैलाऊंगा और यथाशक्ति आपको कुछ दूंगा भी। कुछ देर तक विचार करके चेट्टी ने आगन्तुक पण्डित के स्वभाव, आचरण और विद्वत्ता आदि की तारीफ़ की। फिर उन्हें वह अपने ख़ास कमरे में ले गया। वहां उसने पूछा कि तुम्हारे प्रश्न कहां हैं। पण्डित ने कहा कि वे हमारी डायरी में लिखे हुए हैं और वह डायरी हमारी इस बैग के भीतर है। यह सुनकर गोविन्द ने एक चौथाई तख़्ते काग़ज़ पर पेन्सिल से उन प्रश्नों का जवाब लिखना शुरू किया और बिना रुके या बिना किसी सोच विचार के, वह अधाधुन्ध लिखता ही गया। इस बीच में वह प्रष्टा से कभी सामने पड़ी हुई कौड़ियों को कहता था छुओ; कभी किसी पुस्तक के किसी अक्षर पर कहता था हाथ रक्खो; कभी कुछ संख्याओं का जोड़ पूछता था; कभी कुछ करता था, कभी कुछ। और यह सब करके वह तरह तरह के चमत्कार दिखलाता जाता था। अङ्कों का जोड़ लगवा कर वह बतला देता था कि वह इतना हुआ; या वह अमुक संख्या से कट जाता है; या उसमें अमुक अङ्क इतनी दफ़ा आया है। पर इतना करके भी वह अपने हाथ के काग़ज़ को बराबर रँगता ही जाता था। दोनों काम उसके साथही होते थे। जब वह उस काग़ज़ के दोनों तरफ़ लिख चुका तब उस पर उसने उस पण्डित के दस्तख़त कराये और उसे उसने उस दुभाषिये के हवाले किया। तब उसने वे लिखे हुए प्रश्न मांगे। पण्डित महाशय ने अपनी "हैण्ड बैग" खोली और अपने प्रश्न गोविन्द चेट्टी को उन्होंने सुनाये। उनका अनुवाद दुभाषिये ने तामील में किया। उनमें से कुछ प्रश्न ये थे—

१. मेरी स्त्री का नाम क्या है?
२. मेरा पेशा क्या है?
३. मेरी कविता कौन है?
४. मेरे मन में फूल कौन है?
५. मेरे मन में पक्षी कौन है?
६. मेरी और मेरी स्त्री की उम्र कितनी है?
७. जस्टिस महादेव गोविन्द रानडे इस समय क्या कर रहे हैं?

सब प्रश्न सुनकर गोविन्द चेट्टी ने कहा कि मैंने तुम्हारे सब प्रश्नों का उत्तर दे दिया है। तुम उस काग़ज़ को पढ़ो जिसे मैंने तुम्हारे दुभाषिये के सिपुर्द किया है। याद रखिए प्रश्न बतलाये तक नहीं गये। पर उनका उत्तर पूछनेवाले के दस्तख़त के रूप में सील-मोहर होकर पहले ही से तैयार हो गया। दुभाषिये ने उत्तरों को एक एक करके पढ़ना और उनका अङ्गरेज़ी में अनुवाद करना शुरू किया। फिर क्या था, पूछनेवाले पण्डित महाराज, आश्चर्य, आतङ्क, भक्ति और श्रद्धा के समुद्र में लगे डूबने उतराने। उनके जितने सवाल थे उन सब का सही जवाब उनको मिला। गोविन्द चेट्टी की इस अद्भुत अन्तःसाक्षित्व विद्या को देखकर वे चकित हो गये और पत्र-पुष्प-तुल्य पांच रुपये उसके सामने रखकर वे उस अलौकिक ज्योतिषी से बिदा हुए। उनकी इस भेंट को गोविन्द चेट्टी ने प्रेमपूर्वक स्वीकार कर लिया।

परोक्षदर्शिता का यह उदाहरण इस देश का है। योरप में भी ऐसे ऐसे उदाहरण पाये जाते हैं। इस समय, योरप में, कम्बरलैण्ड साहब का बड़ा नाम है। यह कहते हैं कि मुझ में कोई ऐसी अद्भुत शक्ति नहीं जो औरों में न हो। किसी सिद्धि, किसी अलौकिक विद्या, के बल से हम दूसरे के दिल का हाल नहीं मालूम करते। जो शक्ति हम में है वह और भी बहुत आदमियों में होती है; और यदि वे कोशिश करें, तो वे भी दूसरों के मन की बातें जान सकें। दूसरों के ख़यालात को जान लेना एक प्रकार की बहुत सूक्ष्म स्पर्शन-शक्ति पर अवलम्बित है। जब कोई आदमी कुछ ख़याल करता

है, किसी चीज़ की भावना करता है, तब उस पर कुछ ऐसे चिन्ह उत्पन्न हो जाते हैं जिनसे उस ख़याल का पता लग जाता है—भावना की गई उस चीज़ का ज्ञान हो जाता है। कोई आदमी, बिना इस तरह के चिन्हों को प्रकट किये किसी वस्तु पर अपना चित्त स्थिर नहीं कर सकता; किसी चीज़ का ध्यान नहीं कर सकता; किसी विचार में लीन नहीं हो सकता। ऐसा कर सकना सर्वथा असम्भव है। इन चिन्हों का ज्ञान उसको तो नहीं होता जिस पर वे प्रकट होते हैं, पर चित्त की बात जानने की कोशिश करनेवाले को हो जाता है। विचार, ध्यान, भावना, या ख़याल का कोई रूप नहीं। वे देखे नहीं जा सकते। परन्तु शारीरिक चिन्हों से उन का पता ज़रूर लग जाता है। मैं जब किसीके चित्त पर अङ्कित हुए ख़याल को पढ़ने लगता हूं-तब मेरी आंखों के ऊपर रूमाल बांध दिया जाता है। वह सिर्फ़ इस लिए जिसमें मेरा चित्त और किसी चीज़ की तरफ़ न चला जाय। किसी दूसरे कारण से नहीं। मैं औरों के हाथ को सिर्फ़ छू कर उनके मनका हाल बतला सकता हूं। यहां तक कि बिना छुए और बिना आंख बन्द किये भी औरों के दिल की बातें मैं जान सकता हूं। परन्तु चिन्हों ही के द्वारा। हाथ पैर का हिलाना, होंठ का फड़कना, पसीने का निकलना, पलकों का गिरना, इत्यादि ऐसे चिन्ह हैं जिनसे चित्त की बात जानने में बड़ी मदद मिलती है। यह उक्ति ख़ुद कम्बरलैण्ड साहब के मुंह की है। योरप में जितने बादशाह हैं प्रायः सब ने कम्बरलैण्ड साहब की अन्तर्ज्ञान (Thought reading) विद्या का अनुभव किया है और उसे सही पाया है। इन्होंने हज़ारों अद्भुत अद्भुत चमत्कार दिखलाये हैं। उनमें से दो एक का ज़िकर हम यहां पर करना चाहते हैं। इन्होंने योरप के बादशाहों और रानियों आदि के सामने जो परीक्षायें दी हैं, जो कौतुक दिखाये हैं, उनका संक्षिप्त वर्णन आजकल "पियर्सन्स मैगज़ीन" में छप रहा है।

एक दिन कम्बरलैण्ड साहब "पियर्सन्स मैगेज़ीन" के दफ़तर में पधारे। वहां आप की परीक्षा हुई। एक आदमी से कहा गया कि वह कल्पना करे कि उसके किसी अंग में दर्द हो रहा है। उसने वैसाही किया। साहब की आंखें रूमाल से बांध दी गईं। उन्होंने उस आदमी का हाथ पकड़ा। पकड़ते ही उनके शरीर में एक वैद्युतिक धारा सी बही। उन का हाथ पहले कुछ इधर उधर घूमा। फिर उसने फ़ौरन ही उस आदमी के बांये कान का निचला हिस्सा पकड़ लिया। बस वहीं उस आदमी ने दर्द होने की भावना मन में की थी। इस बात को देख कर देखनेवाले अचरज में आ गये। वे चकित हो उठे। वहां पर, उस समय, एक और आदमी बैठा था। उससे कहा गया कि तुम भी किसी चीज़ की भावना करो। उसने एक चीज़ की तसवीर की भावना करनी चाही। सफ़ेद काग़ज़ का एक मोटा तख्ता दीवार पर लगा दिया गया। कम्बरलैण्ड साहब ने उस आदमी का हाथ अपनी कलाई पर रक्खा और उससे कहा कि तुम काग़ज़ की तरफ़ देखो और भावना करो कि तुम उस पर अपनी भावित वस्तु की तसवीर खींच रहे हो। उसने वैसाही किया। वह उधर उसकी भावना करने लगा, यह इधर हाथ में पेन्सिल लेकर उस भावना का चित्र उतारने लगे। एक मिनट में यह परीक्षा पूरी हो गई। देखा गया तो मालूम हुआ कि वह चित्र सड़कों पर गड़े हुए एक लालटैन का था। उसी की भावना उस मनुष्य ने की थी; परन्तु उसे सोचते समय उसके ब्रैकेट का ख़याल उसे नहीं रहा था। इससे साहब ने जो तसवीर बनाई उसमें भी ब्रैकेट न था। इस अद्भुत शक्ति को देख कर सब लोग हैरत में आगये। इनके सिवा और भी कई प्रमाण उन्होंने अपने अन्तर्ज्ञान के दिये।

योरप के धनकुबेर राथ्सचाइल्ड के यहां एक दिन जलसा था। हमारे राजेश्वर एडवर्ड, सप्तम, भी उसमें शरीक थे। कम्बरलैण्ड साहब भी वहां

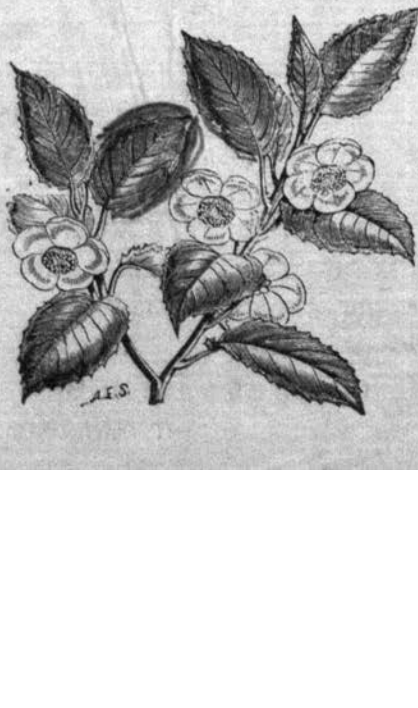
उस समय हाज़िर थे। राजेश्वर ने उनके अन्तर्ज्ञान की परीक्षा करनी चाही। उन्होंने लङ्का में मारे गये एक बे-पूंछ के हाथी की भावना की। कम्बरलैण्ड ने तत्काल ही उसका चित्र खींच दिया, पर पूंछ उन्होंने नहीं बनाई। पूछने पर मालूम हुआ कि राजेश्वर ने पूंछ की भावना ही नहीं की; क्योंकि वह उस हाथी के थीही नहीं।

हमारे राजेश्वर की वर्तमान महारानी अलेग्ज़ण्डरा एक दफ़ा डेनमार्क में, अपने पिता के यहां, थीं। वहां भी किसी मौक़े पर कम्बरलैण्ड साहब पहुँचे। महारानी ने महल के किसी दूसरे हिस्से में रक्खे हुए एक फ़ोटो की भावना की और यह चाहा कि कम्बरलैण्ड साहब उसे वहां से उठा लावें। साहब ने कहा, बहुत अच्छा। वे ग्रीस के शाहज़ादे जार्ज के साथ फ़ौरन वहां गये और उस फ़ोटो को लाकर उन्होंने उसे महारानी के हाथ में दे दिया। इस अलौकिक शक्ति को देखकर सब लोग स्तम्भित से हो गये।

एक दफ़ा रूस के ज़ार ने एक रूसी शब्द की भावना की। कम्बरलैण्ड रूसी भाषा बिलकुल ही नहीं जानते। परन्तु उस शब्द को उन्होंने तद्वत् लिख दिया।

कम्बरलैण्ड साहब ने ऐसे ही अनेक राजा, महाराजा, और धनी मानी आदमियों के मन की बातों को बतलाकर, लिखकर, चित्र द्वारा खींच कर, अपनी अद्भुत अन्तर्ज्ञान-विद्या की सत्यता को सिद्ध कर दिखाया है।

मूक प्रश्नों का उत्तर देने और मनकी बात बतलाने में केरल प्रान्त के ज्योतिषियों का इस देश में बड़ा नाम रहा है। सुनते हैं अब भी वहां इस विद्या के अच्छे अच्छे पण्डित पाये जाते हैं। और भी कहीं कहीं ऐसे ऐसे अन्तर्ज्ञानियों का नाम सुन पड़ता है। शाही ज़माने में लखनऊ में भी इस तरह के आदमी थे जो दूसरे के मन का हाल बतला देते थे। कोई १० वर्ष हुए हमारे मित्र बाबू सीताराम को लखनऊ में ऐसा ही एक वृद्ध मनुष्य मिला था। वह इन से बिलकुल अपरिचित था। परन्तु उसने इनका पुराना इतिहास सब बतला गया और इनके मन की बातों को उसने इस तरह सही सही कहा मानो वह इनके हृदय के भीतर घुसकर उनको मालूम कर आया था। परन्तु लोगों का विश्वास इस विद्या से उठता जाता है। क्योंकि इसके अन्दर धूर्तता अकसर छिपी हुई मिलती है।





राजा रामपालसिंह, सी० आई० ई० ।

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ६] मई, १६०५ [संख्या ५

विविध विषय।

फोटो के चित्र अब तार और टेलिफोन द्वारा भेजे जाने लगे हैं। एक फोटो भेजने में आध घण्टा लगता है। अतएव अभी इसमें अधिक उन्नति दरकार है। रूस जापान की लड़ाई के कल के चित्र आज के समाचारपत्रों में नहीं छप सकते। आशा है कि यह दिक़त शीघ्र ही मिट जायगी।

* * *

पाठकों को उस विलक्षण ज्योति की बात मालूम होगी जो X (यक्स) किरणों के नाम से प्रसिद्ध है। डाकृर ब्रेट के पुत्र की दृष्टि ठीक इन्हीं किरणों के समान है। यह लड़का १७ वर्ष का है। वह अपनी आँखों से मनुष्यों के शरीर के भीतर की हड्डियां, नसें और रक्त आदि सब देख सकता है। इस अलौकिक दृष्टि से वह अपने पिता के चिकित्सा-व्यवसाय में खूब सहायता करता है।

* * *

परलोकवासी ग्लैडस्टन साहब की भतीजी, श्रीमती स्टुअर्ट, ने वैज्ञानिक-संसार में बड़ी खलबली मचा दी है। उसका कथन है कि जिस प्रकार का भाव मनुष्य के मनमें रहता है उसी के अनुसार उस भाव का एक ख़ास रङ्ग का आकार होता है। ऐसे रङ्गीन सूक्ष्म आकार को, जो मनुष्य के शरीर से निकलता रहता है, वह देख सकती है। एक विद्वान् ने अपनी एक पुस्तक में इस विषय की पूरी आलोचना की है। उस पुस्तक में उन्होंने अनेक चित्र भी दिये हैं। उन में उन्होंने दिखलाया है कि भिन्न भिन्न प्रकार के मनुष्यों के हृदयङ्गम भावों के आकार का रङ्ग भी भिन्न भिन्न प्रकार का होता है।

* * *

ऊपर के तीनों नोट चौधरी पुरुषोत्तमप्रसाद शर्म्मा ने भेजे हैं।

* * *

ट्रांसवाल की प्रीमियर नामक खान से एक हीरा निकला है। दुनिया में इस समय जितने हीरे हैं यह उन सब से बड़ा है। बड़ाई में इसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता। नाप में यह ४½ इञ्च ×

२½ इञ्च है। इसका वज़न ३,०३२ कैरट है। यह इस समय लण्डन में है। ट्रांसवाल से भेजने के समय ७५,००,००० रुपये का इसका बीमा हुआ था। इसका नाम रक्खा गया है कुलीनन।

***

संस्कृत में कथासरित्सागर एक बहुत बड़ा और अनूठा ग्रन्थ है। इसे एक अद्भुत उपन्यास कहना चाहिए। इसमें अनन्त कथायें हैं। वे सब शृङ्खलाबद्ध हैं। उन कथा-रूपिणी नदियों का यह समुद्र है। इसकी कथाओं के आशय के आधार पर संस्कृत में अनेक ग्रन्थ बने हैं। इसके आदि-कर्ता गुणाढ्य कवि हैं। यह ग्रन्थ पहले पिशाच भाषा में था। इसका प्रथम नाम बृहत्कथा था। इसमें एक लाख श्लोक थे। पर यह ग्रन्थ अब नहीं मिलता। विद्यमान कथासरित्सागर इसीका सारांश है। इसके कर्ता सोमदेव भट्ट हैं। उन्होंने पचीस हज़ार श्लोकों में यह संक्षिप्त कथासागर बनाया है। महाकवि क्षेमेन्द्र ने बृहत्कथा की कथाओं को बहुत ही संक्षिप्त करके बृहत्कथामञ्जरी नाम की एक पुस्तक लिखी है। परन्तु वह इतनी अधिक संक्षिप्त है कि कथाओं का स्वारस्य कम हो गया है।

***

संस्कृत में कथासरित्सागर के दो संस्करण हमने देखे हैं। एक निर्णयसागर का, दूसरा जीवानन्द विद्यासागर का। पहला पद्य में है। वह सोमदेवकृत पद्यग्रन्थ का छपा हुआ संस्करण है। दूसरा गद्यात्मक है। उसका गद्य अत्यन्त सरल है। पण्डित जीवानन्द ने सोमदेव के पद्य-प्रबन्ध से इस गद्य-ग्रन्थ की रचना की है। इसे पढ़ने में ज़रा भी प्रयास नहीं पड़ता। विद्यार्थी तक इसे समझ सकते हैं। इबारत बहुत ही रंगीन और मनोहारिणी है। सरलता में तो वह कहीं कहीं पर हितोपदेश और पञ्चतन्त्र की इबारत को भी मात करती है।

***

इसका पहला अनुवाद हिन्दी में निकले कोई आठ वर्ष हुए। वह पण्डित कालीचरण और पण्डित क्षमापति वाजपेयी के द्वारा मुंशी नवलकिशोर के लिए लिखा गया था। उन्हींके प्रेस में वह छपा है। क्षमापति जी से हमारा ख़ूब परिचय है। कविता का मर्म्म जानने में आप अद्वितीय हैं। शायद ही कोई काव्य ऐसा हो जो आपने न देखा हो। ऐसे विद्वान् और सहृदय पण्डित की सहायता से किया गया अनुवाद अच्छा होना ही चाहिए। पर जहां विद्वत्ता मोल ली जाती है वहां त्रुटियां अवश्य ही आ जाती हैं। इससे यह अनुवाद भी किसी किसी बात में निर्दोष नहीं है। परन्तु इस अनुवाद में मूल का कोई भी भाव, यथासम्भव, नहीं जाने पाया; और जहां तक हमने देखा, अनुवाद में भूलें भी नहीं हैं। इसका मूल्य भी बहुत कम है।

***

कुछ दिनों से इसी कथासरित्सागर के एक और अनुवाद की धूम है। यह अनुवाद भी हिन्दी में हो रहा है। बनारस के श्रीरामकृष्ण वर्म्मा इस अनुवाद को लिख रहे हैं और हर महीने इसका एक एक भाग निकाल रहे हैं। तीन वर्ष में यह अनुवाद ख़तम होगा। हर एक भाग का अलग अलग दाम ॥=) है। पर साल भर का हमें मालूम नहीं। इस अनुवाद के पहले ८ पृष्ठ, नमूने के तौर पर, एक सामयिक पुस्तक के साथ, क्रोड़पत्र के रूप में, हमारे पास पहुँचे हैं। उनसे मालूम हुआ कि इस पुस्तक का नाम "कथा सरित्सागर का भाषा-नुवाद" है। हमारी समझ में संस्कृत, अङ्गरेज़ी, फ़ारसी, ग्रीक, लैटिन, हेब्रू आदि सभी भाषायें हैं। इससे सिर्फ़ भाषानुवाद कह देने से हिन्दी-भाषानुवाद का बोध नहीं होता। यों तो पुस्तक ही हिन्दी में है। यदि भाषा शब्द भी निकाल लिया जाय तो भी लोग पढ़कर जान लेंगे कि अनुवाद की भाषा हिन्दी है। पर यदि इसका नाम हिन्दी-कथासरित्सागर, या कथासरित्सागर का हिन्दी-भाषानुवाद, या इसी तरह का कुछ और नाम होता तो अच्छा होता।

***

इस नमूने के हमने दो पृष्ठ पढ़े। शुरू में ही एक जगह लिखा है—"जिस समय प्रणाम करनेवाले देवताओं के मस्तकों पर इनके चरण के नखों की आभा पड़ती है तो यही जान पड़ता है कि मानो भगवान् चन्द्रशेखर को प्रसन्नता से उन लोगों ने भी एक एक अर्द्धचन्द्र अपने अपने मस्तक पर प्राप्त किया है"। इस विषय में हमारी एक प्रार्थना है। मस्तक पर नखों की आभा पड़ने से कोई प्रतिबिम्ब नहीं दिखाई दे सकता। क्योंकि मस्तक पारदर्शी नहीं होता। हां यदि मस्तक पर कोई चमकोला मुकुट रक्खे हो, या कोई मणि इत्यादि धारण किये हो, तो प्रणाम करते समय नखों का प्रतिबिम्ब उन पर पड़ सकता है। मालूम नहीं, संस्कृत के किस संस्करण से श्रीरामकृष्ण वर्म्मा ने यह अनुवाद किया है। जीवानन्द के संस्करण में तो मूल वाक्य इस प्रकार है—"यस्य च चरणनखाग्रप्रतिबिम्बित-चूड़ामणयः प्रसादलब्धार्द्धचन्द्रा इव भान्ति सुरासुराः"। इससे स्पष्ट है कि "मणयः" (मणियां) का अनुवाद होने से रह गया है। इसी से यह त्रुटि आ गई है। इसी वाक्य का अनुवाद मुंशी नवलकिशोर के संस्करण में इस तरह किया गया है—"मुकुटों पर जड़ी हुई मणियों में जिनके चरणों के नखों के प्रतिबिम्ब पड़ने से देवता तथा दैत्य लोग चन्द्रशेखर से मालूम होते हैं"। इन अवतरणों से यह भी सिद्ध है कि बनारस के नये अनुवाद में "सुरासुराः" में से सुरों का अर्थ ले लिया गया है और असुरों का छोड़ दिया गया है। पर असुर भी चाहिए। क्योंकि शङ्कर के प्रणत भक्तों में असुर भी हैं। एक बात और भी है। "जिस समय......... आभा पड़ती है तो यही जान पड़ता है"—इस वाक्य में जिस समय के साथ, 'तो' का आना ज़रा खटकता है। 'तो' की जगह यदि 'उस समय' न हो तो 'तब' ही सही। पर 'तो' का आना 'जो' या 'यदि' के ही साथ अच्छा लगता है। यदि हमारे सदृश अल्पज्ञों के वाक्यबन्ध में शिथिलता आ जाय तो विशेष आश्चर्य्य की बात नहीं। पर हिन्दी के नामी लेखकों के लेख में यह बात न होनी चाहिए।

राजा रामपालसिंह, सी० आई० ई०।

सरस्वती के पांचवें भाग की पांचवीं संख्या में कालाकांकर के अधिपति राजा रामपालसिंह का जीवनचरित प्रकाशित हो चुका है। जैसा वहां पर कहा गया है, इस प्रान्त के राजा और तअल्लुक़ेदारों में, विद्यादेवी का प्रवेश बहुत ही कम है। लक्ष्मी और सरस्वती का सापत्न्यभाव प्रायः सब कहीं देखा जाता है। सरस्वती की तो इन पृथ्वीपालों पर इतनी कृपा है कि बहुतेरे अपना नाम भी, अच्छी तरह, सही सही नहीं लिख सकते। परन्तु रामपालसिंह नाम में कुछ ऐसी विशेषता है कि उसमें इस नियम का व्याघात पाया जाता है। एक राजा रामपालसिंह का चरित पाठक पढ़ चुके हैं। आज एक दूसरे राजा रामपालसिंह का चरित उनको सुनाया जाता है। इन्हों ने भी लक्ष्मी-सरस्वती के सापत्न्यकलंक की कालिमा को अपनी उज्वल कीर्ति से धो डाला है।

सुलतानपुर और रायबरेली होते हुए जो रेलवे लाइन बनारस से लखनऊ को जाती है उस पर निगोहां नाम का एक स्टेशन है। वहां से पांच मील दूर कुर्री सुदौली नामक एक राजधानी है। वह रायबरेली के ज़िले में, सदर स्टेशन से २५ मील दूर, है। इस चरित के नायक राजा रामपालसिंह, सी० आई० ई०, उसी राज्य के स्वामी हैं। अवध प्रान्तके अन्तर्गत रायबरेली ज़िले में क्षत्रियों की बहुत अधिकता है। ये क्षत्रिय प्रायः बैस सम्प्रदाय के हैं और त्रिलोकचन्द के वंशज कहलाते हैं। ये राजा साहब भी इसी वंश के अङ्कुर हैं।

राजा साहब के पूर्वपुरुष कालीराय नामक थे। उनके तीन पुत्र हुए:—हरसिंह राय, नरसिंह

राय और वीरभानु। इनमें से हरसिंह राय नहट में, नरसिंह राय नरसिंहपुर में और बीरभानु बिहर में रहे। हरसिंह राय की चौथी पुश्त में अभयचन्द्र हुए। उन्होंने सुदौली को अपना निवासस्थान बनाया। अभयचन्द्र की चौथी पुश्त में सिद्कसिंह हुए। उनको तत्कालीन दिल्ली-सम्राट ने राजा की पदवी दी। उसी समय से सुदौली के भूपति राजा कहलाने लगे। सिद्कसिंह की चौथी पीढ़ी में राजा हिन्दपालसिंह हुए। उनके कोई पुत्र न था। इस लिये उन्होंने रामपाल सिंह जी को गोद लिया। रामपालसिंहजी का जन्म १८६७ ईस्वी में हुआ था और १८६८ ईस्वी में आपने राजा हिन्दपालसिंह के गोद की शोभा बढ़ाई।

रामपालसिंहजी को गोद लेने के थोड़ेही दिनों बाद राजा हिन्दपालसिंह का परलोक हो गया। अतएव राज्य का प्रबन्ध कोर्ट आफ़ वार्ड्स् के द्वारा होने लगा; क्योंकि रामपालसिंहजी के वयस्क होने तक यही प्रबन्ध ज़िले के हाकिमों को उचित जान पड़ा। परन्तु ऐसा होने से रामपालसिंहजी के विद्याध्ययन में व्यत्यय नहीं आया। आप पहले रायबरेली के ज़िला स्कूल में पढ़ने के लिये भेजे गये। वहां आप केवल एक वर्ष रहे। वहां के स्कूल की पठन-पाठन-प्रणाली से सर सैयद अहमद के द्वारा स्थापित अलीगढ़ के मोहामेडन कालेज की प्रणाली अच्छी समझी गई। इस लिये श्रीमान् वहां भेजे गये। वहां आप १८७७ ईस्वी में भरती हुये। इस कालेज में प्रविष्ट होकर आपने पढ़ने लिखने में बहुत परिश्रम किया। किसी ने कहा है—

सुखार्थी च त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी च त्यजेत्सुखम्।
सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम्॥

इस उक्ति के आप उदाहरण स्वरूप बन गये। सुखेप्सा को बिलकुल ही तिलाञ्जुलि देकर आप अध्ययन में तन्मनस्क हुए। कुशाग्रबुद्धि आप स्वभाव ही से थे; पढ़ने लिखने में आपका ध्यान भी बेहद लगता था; परिश्रम भी आप खूब करते थे। अतएव इसका फल भी आपको यथेच्छ मिला। १८८५ ईस्वी में कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रवेशिका परीक्षा में आप योग्यता के साथ उत्तीर्ण हुए। उत्तीर्ण क्या हुए, अवध के तअल्लुक़ेदारों का आपने गौरव बढ़ाया। यह, इस प्रान्त में, गवर्नमेंट के पहले 'वार्ड' थे, जिन्हों ने अपने विद्यानुराग और परिश्रम का ऐसा अच्छा परिचय दिया। इन के विद्याग्रहण-सम्बन्धी उत्साह, और परीक्षा में साफल्य, के उपलक्ष्य में इनको सर सैयद अहमद खां का मेडल मिला—

चकास्ति योग्येन हि योग्यसङ्गमः।

यह बहुत ही अच्छा हुआ।

घाघरा के किनारे, गोंडा ज़िले में, एक धनावां नामक रियासत है। यह रियासत बहुत प्राचीन और प्रतिष्ठित है। यहीं १८८५ ईस्वी में रामपालसिंहजी का विवाह हुआ। पत्नी भी, भाग्यवश, आपको अपने अनुरूप और अनुकूल मिली। रानी साहब विशेष बुद्धिमती, स्वकार्यदक्ष और पतिपरायणा हैं। इसीसे पति-पत्नी में प्रगाढ़ स्नेह रहता है। ऐसी सहधर्म्मचारिणी पाकर राजा दिलीप के विषय में कही गई कालिदास की नीचे लिखी हुई उक्ति को पालन करना रामपालजी ने भी अपना धर्म्म माना—

कलत्रवन्तमात्मानमवरोधे महत्यपि।
तया मेने मनस्विन्या लक्ष्म्या च वसुधाधिपः॥

परन्तु—"अवरोधे महत्यपि"—अर्थात् "बहुत रानियों के रहते भी"—इन शब्दों को आप ने अपने अनुकरण योग्य नहीं समझा।

वैवाहिक उत्सव समाप्त होते ही रामपाल जी फिर अलीगढ़ गये और फिर पूर्ववत् मनोनिवेशपूर्वक अध्ययन करने लगे। १८८७ ईस्वी में आप ने कलकत्ता-विश्वविद्यालय की एफ़० ए० परीक्षा सफलतापूर्वक पास की। यहीं पर आपने अपने

विद्वत्व की सीमा की समाप्ति नहीं समझी। आप ने बी० ए० में भी पढ़ना शुरू किया और तीसरे वर्ष की क्लास को उल्लंघन करके आप चौथे वर्ष की कलास में पहुंचे। आपका यह गाढ़ संकल्प था कि कुछ महीने इस क्लास में भी रह कर बी० ए० पास कर लें; परन्तु इसी बीच में आपका राज्य "कोर्ट आफ़ वार्ड्स" के प्रबन्ध से छूट गया। इस लिये, विवश होकर, आपको कालेज छोड़कर, राज्य प्रबन्ध देखने के लिये, घर आना पड़ा।

जिस समय रामपालसिंह जी को राजत्व प्राप्त हुआ उस समय आपकी राजधानी में राजत्वसूचक वस्तुओं का संग्रह बहुत कम था। इस लिए राज्याधिकार मिलने पर आपने उन सब वस्तुओं का संग्रह आरम्भ किया और थोड़े ही दिनों में श्रीमान् ने सारी राजकीय वस्तुओं से अपनी राजधानी को अलंकृत कर लिया। प्राचीन राजमन्दिर भी वर्तमान समय और प्रथा के अनुसार न होने के कारण उसका भी आपने उद्धार करना आवश्यक समझा। शीघ्र ही सब सामग्री प्रस्तुत हो जाने पर उसका भी काम आरम्भ हुआ। एक नया प्रासाद बनने लगा। इसका बहुत सा भाग समाप्ति को पहुंच गया है; परन्तु अभी तक काम जारी है। आशा है, शीघ्र ही उसकी समाप्ति पूरे तौर पर हो जायगी। बन जाने पर आपका यह प्रासाद बहुत ही दर्शनीय होगा।

राजा रामपालसिंह जी ने बड़ी योग्यता से राज्य का काम काज देखना प्रारम्भ किया। थोड़े ही दिनों में आपके प्रजापालन आदि की कीर्ति-कौमुदी दूर दूर तक पहुंच गई। रियासत के प्रबन्ध और राज-धर्म्म के निर्वाह में आपने—

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः॥
तस्य सम्वृतमंत्रस्य गूढ़ाकारेङ्गितस्य च।
फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव॥

इत्यादि दिलीप के विषय में रघुवंशोक्त कालिदास की उक्तियों को उदाहरणवत् माना। और तदनुकूल ही आपने, आज तक, यथासम्भव अपना व्यवहार और आचरण रक्खा है।

राज्य तो आप को प्राप्त हुआ; परन्तु तदानुषंगी दोषों को आपने दूर ही से परित्याग किया—

न मृगयाभिरतिर्न दुरोदरं न च शशिप्रतिमाभरणं मधु।
तमुदयाय न वा नवयौवना प्रियतमा यतमानमपाहरत्॥

न आपने मृगया ही में अत्यन्त आसक्ति की; न मधु ही में; न खेलही कूद में; और न नवयौवना प्रियतमा ही में। प्रजापालन, राजधर्म्मानुकूल आचरण और विद्या-व्यासङ्ग ही को आपने अपना सर्वस्व माना। कालेज छोड़ते ही आपने सरस्वती की पूजा का विसर्जन नहीं किया। आप उसकी आराधना बड़े प्रेम से करतेही रहे और अब भी करते हैं; जिसका फल यह हुआ कि अङ्गरेज़ी और फ़ारसी, इन दोनों भाषाओं में, आपकी व्युत्पत्ति बढ़ती हो गई; और संस्कृत में भी आपको अभ्यास हो गया। जब आपकी ख्याति गवर्नमेण्ट के कान तक पहुंची तब उसने भी आपको दूसरे श्रेणी का आनररी मैजिस्ट्रेट नियत करके आपका उचित आदर किया,—यहां तक कि उसने, आनररी मैजिस्ट्रेटी के साथ, आपको आनररी मुन्सफ़ी भी दे दी।

राजा रामपालसिंहजी ने अपनी प्रजा के हित और आराम के लिए देहात में बैंक खोल दिये हैं। वहां से लोगों को बहुत कम सूद पर रुपया मिलता है। इससे प्रजा को बहुत सुविधा हो गई है; वे लोग महाजनों से ठगाये जाने से बचते हैं और कृषि इत्यादि का काम अच्छी तरह से करके खब लाभ उठाते हैं। इसके लिए वे श्रीमान् को अन्तःकरण से धन्यवाद देते हैं। राजा साहब ने देहाती बैंकों के विषय में एक लेख भी अङ्गरेज़ी में, कुछ दिन हुए, लिखा था। खेती के महकमे के डाइरेकृर मेरलैण्ड साहब ने इस लेख की बहुत प्रशंसा की है।

श्रीमान् रामपालसिंहजी अपने राज्य ही का सुप्रबन्ध करके चुप नहीं रहते। स्वदेश के हित के

लिए आप और भी अनेक उपयोगी विषयों में तन, मन, धन से सहायता करते हैं। आपने काशी के सेंट्रल हिन्दू कालेज की सहायता की है; प्रयाग के मैकडानल हिन्दू बोर्डिङ्ग हौस की सहायता की है; और क्षत्रिय-महासभा की भी आपने बहुत कुछ सहायता की है। क्षत्रिय-महा-सभा का तो आपको एक स्तम्भ ही कहना चाहिए।

राजा रामपालसिंहजी समुद्र-यात्रा, विधवा-विवाह और स्त्री-शिक्षा के बहुत बड़े पक्षपाती हैं। और साथ ही आप बाल-विवाह और बहु-विवाह के नितान्त विरोधी क्या, नितान्त द्रोही, हैं।

राजा साहब को हिन्दी से भी प्रगाढ़ स्नेह है। आप हिन्दी का आदर ही नहीं करते; किन्तु उस के समाचारपत्र और ग्रन्थों को पढ़ते भी हैं। आपके दफ़्तर के सब काग़ज़ात हिन्दी ही में रक्खे जाते हैं और अरज़ियां इत्यादि भी प्रायः हिन्दी ही में दी जाती हैं।

राजा रामपालसिंहजी अत्यन्त नीतिपरायण, सत्यशील और उदारचेता हैं। सच कहने से आप कभी नहीं डरते; और देश के हित के लिए हाकिमों के प्रसन्न अथवा अप्रसन्न होने की शङ्का न करके, आपको जो कुछ उचित जान पड़ता है, वही करते और कहते हैं। सर अण्टोनी मेकडानल के शासन-काल में, जब कौंसिल में कोर्ट आफ़ वार्ड्स का बिल पेश था, तब राजा साहब ने निर्भय होकर अपनी सम्मति पायनियर में प्रकाशित की थी और बिल की कई एक बातों का बड़ी ही योग्यता से खण्डन किया था। इस चातुर्य्य और इस योग्यता से बिल का प्रतिवाद किसी दूसरे भूमिस्वामी से नहीं किया गया; यद्यपि कई एक व्यक्ति कौंसिल के मेम्बर भी थे। लाट साहब श्रीमान् के लेख से बहुत प्रसन्न हुए थे। तभीसे वे श्रीमान् की विशेष प्रतिष्ठा भी करने लगे थे। जिस समय आबपाशी-कमीशन की बैठक लखनऊ में थी, उस समय आपने उसके सम्मुख जो साक्षी दी थी वह सुनकर सुननेवाले आनन्द से पुलकित हो उठे थे। आपसे और माननीय डी० टी० राबर्ट्स साहब से इस विषय में कुछ विवाद भी हुआ था। आपकी साक्षी में साद्यन्त देशहित और युक्तिवाद भरा हुआ था।

आपकी नीति कुछ कुछ अकबर की ऐसी है। आप मुसल्मान, बौद्ध, जैन, ईसाई और पारसी इत्यादि धर्म्मों के अनुयायियों का समान आदर करते हैं। किसीसे आप द्वेष-भाव नहीं रखते। साफ़ तौर पर अभी तक किसीको यही नहीं प्रतीत हुआ कि आपका मत कौन सा है। हां, यह अवश्य विदित होता है, कि आपका झुकाव समाज-संशोधन की ओर अधिक है। आप बहुत दिनों से थियासफ़िकल सोसाइटी के सभासद हैं और "फ़्री-मेसन" भी हैं। आपका विचार इङ्गलैण्ड जाने का भी है। भारतवर्ष में तो आप बहुधा देशाटन करने जाया करते हैं।

राज्य के काम काज और पढ़ने लिखने से जब आपको अवकाश मिलता है तब आप टेनिस खेलते हैं; व्यायाम करते हैं; दूर दूर तक पैदल टहलने निकल जाते हैं; और आखेट भी करते हैं। परन्तु हमारी प्रार्थना है कि आप "अहिंसा परमोधर्म्मः" के सिद्धान्त का अवलम्बन करके मृगया में जीव-हिंसा न करें। आपको पशु-पक्षियों की भी वैसी ही रक्षा करनी चाहिए जैसी कि आप अपनी प्रजा की करते हैं। यद्यपि राजाओं को परम्परा से आखेट की रुचि होती चली आई है और लाभ भी इसमें बतलाये जाते हैं; तथापि दिग्विजयी अशोक क्या कोई ऐसा वैसा राजा था जिसने हिंसा न करने को मनाई भरतखण्ड के सब भागों में ऊंचे ऊंचे शिलाओं पर खोदवा दी थी।

दिल्ली में, जब श्रीमान् सातवें यडवर्ड के तिलकोत्सव का उत्सव और दरबार हुआ था, तब, राजा रामपालसिंह बड़े आदर से निमन्त्रित किये गये थे। वहां पर आपका समुचित सम्मान भी हुआ था। आपके अनेक प्रशंसनीय कार्य्यों से प्रसन्न होकर राजराजेश्वर के जन्मदिन के उत्सव में, विगत वर्ष, गवर्नमेण्ट ने आपको सी० आई० ई० की उपाधि

दे कर आपकी प्रतिष्ठा को और भी बढ़ा दिया है। आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय के 'फ़ेलो' भी हैं।

ऐसे सुयोग्य, चतुर, विद्वान्, नीतिनिपुण और उदाराशय राजा की हम अन्तःकरण से दैनन्दिन अभिवृद्धि चाहते हैं और आशा रखते हैं कि अन्यान्य तअल्लुक़ेदार और भूपति भी आपके सद्गुणों का अनुकरण करने की चेष्टा करेंगे।

पृथ्वीपालसिंह।

सम्पादक।

मेरी घरवाली जब जीवित थी तब ललिता के लिए मुझे कुछ चिन्ता न थी। तब मैं ललिता की अपेक्षा ललिता की माता ही की धुन में अधिक लगा रहता था।

तब ललिता के खेल और उसकी मीठी मीठी मुसक्यान को देखकर, उसकी तोतली बातों को सुनकर, और उसके प्यार ही को सब कुछ समझकर, मुझे सन्तोष हो जाता था। जब तक अच्छा लगता मैं उसे लेकर खेलाया करता; रोते ही उसे उसकी मा की गोद में डाल कर अपना पिण्ड छुड़ा लेता। आगे उसके पालने पोसने का बड़ा भारी झंझट उठाना पड़ेगा सो बात कभी मेरे मन में नहीं आई थी।

निदान, मेरी स्त्री असमय में मर गई। और वह कन्या अपनी माता की गोद से छूट कर मेरी गोद में आ गिरी—मैंने उसे उठाकर अपने कलेजे से लगा लिया।

परन्तु, माता से बिछुड़ी कन्या को दुगने स्नेह से पालना मेरा धर्म्म है, इस बात को मैंने अधिक सोचा था; या पत्नीहीन पिता की परम यत्न से रक्षा करनी चाहिये इसका ललिता ने अधिक अनुभव किया था,—यह मेरी समझ में ठीक ठीक नहीं आया। क्योंकि, छः वर्ष की ही होते न होते वह गृहस्थी के काम काज में प्रवीण होने लग गई। साफ़ जान पड़ने लगा कि नन्ही सी कन्या अपने पिता की एक मात्र आधार बनने की चेष्टा कर रही है।

मैंने, मनही मन हंसकर, उसके हाथों में आत्म-समर्पण कर दिया। मैं देखता था कि मैं जितना ही निकम्मा और असहाय हो जाता, उसे उतना ही अच्छा लगता। मैं आप अपने कपड़े या टोपी उतार कर धरता तो वह ऐसा मुंह बना लेती मानों मैं उसके अधिकार में ज़बरदस्ती हाथ डाल रहा हूं। बाप के बराबर इतना बड़ा खिलौना पहले उसे कभी नहीं मिला था। इसीलिये बाबा को खिलाकर, पिलाकर, कपड़े पहनाकर, बिछौने पर सुलाकर, दिनभर वह आनन्द में मग्न रहती थी। सिर्फ़ शिक्षा-वली और सुताप्रबोध पढ़ाते समय ही मेरे पितृत्व को वह सचेत कर देती थी।

पर, कभी कभी मेरे मन में यह चिन्ता आ जाती थी कि कन्या का सुपात्र से विवाह करने के लिए धन का प्रयोजन होगा—मेरे पास इतना रुपया कहां? मैं उसे भरसक पढ़ाता तो था, परन्तु सोचता कि यदि वह किसी निरे मूर्ख के हाथ पड़ जाय तो उसकी क्या दशा होगी?

धनार्जन में मैंने ध्यान लगाया। सरकारी दफ़्तर में नौकरी करने की अवस्था तो अब न रही थी। और, दफ़्तरों में घुसने की योग्यता भी नहीं थी। इससे बहुत सोच विचार कर मैं ग्रन्थ रचने लगा।

बांस की नली में छेद करने से उसमें न तेल रक्खा जा सकता है, न पानी ठहर सकता है। धारणा-शक्ति उसमें बिलकुल नहीं रहती; उससे संसार का कोई काम नहीं चल सकता; परन्तु फूंकने से बेदाम की बांसुरी ख़ूब बजती है। मैं अच्छी तरह जानता था कि जिस हतभाग्य की बुद्धि संसार के किसी काम में नहीं काम देती, वह मनुष्य पुस्तक निश्चय ही अच्छी लिख लेगा। इसी साहस पर मैंने एक प्रहसन लिख डाला। लोग उसे अच्छा कहने लगे और एक नाटकवाले ने उसका अभिनय भी कर दिखाया।

सहसा निर्मल यशोनीर का स्वाद पाकर मैं ऐसी आपत्ति में फँस गया कि प्रहसन मुझसे छुटता ही न था। दिन भर व्याकुल-चित्त और सोच से भरे हुए मुख से मैं प्रहसन लिखने लगा।

ललिता आकर, प्यार से, हँसती हुई पूछने लगी, "बाबा, नहाओगे नहीं ?"

मैं हुंकार देकर गर्ज उठा—"अभी जा, अभी दिक़ मत कर"।

बेचारी का मुँह, फूंक कर बुझाये गये दीपक के समान अँधेरे से छा गया। वह अनादर से फूलते हुए हृदय को लेकर कब वहां से चली गई, मुझे जान भी न पड़ा।

मैं दासी को हटा देता, नौकर को मारने दौड़ता, भिखारी ऊंचे स्वर से यदि भीख मांगता तो लाठी लेकर मैं उस पर जा टूटता। मेरी बैठक सड़क के किनारे हो पर थी। सड़क को ओर एक खिड़की खुली रहती थी। मेरे पुस्तक लिखते समय कोई भोलाभाला राही खिड़की में होकर यदि मुझसे राह पूछता तो मैं उसे जहन्नुम नाम की किसी मशहूर जगह में जाने को कहता। हाय, कोई यह नहीं समझता था कि मैं एक बड़ाही मज़ेदार प्रहसन लिख रहा हूं।

परन्तु मज़ा जितना और यश जितना मिलने लगा, उसके परिमाण से धन कुछ भी न मिला। उस समय धन की बात स्मरण भी नहीं थी। इधर ललिता के योग्य लड़के दूसरे दूसरे मनुष्यों की कन्याओं से ब्याहे जाने लगे,—इस पर मेरा ध्यान नहीं गया।

पेट में जब तक ज्वाला नहीं धधकती तब तक चैतन्य नहीं होता। परन्तु वैसा भी अवसर आ पहुंचा। ज़ाहिरगांव के तअल्लुकेदार ने ज़ाहिरमित्र नामक एक समाचारपत्र निकाल कर मुझे उसकी सम्पादकी पर बुला भेजा। मैंने यह नौकरी स्वीकार कर ली।

कुछ दिनों तक मैंने ऐसे प्रबल वेग से लिखा कि राह चलते लोग मुझे, मेरी ओर अँगुली उठा कर, बताने लगे और मैं अपनेको जेठ की दुपहरी के सूर्य के समान दुर्निरीक्ष्य समझने लगा।

ज़ाहिरगांव के पास ही एक बाहरगाँव है। दोनों गांवों के तअल्लुक़ेदारों में बड़ी भारी प्रतिस्पर्द्धा थी। पहले बात बात में लाठी चल जाया करती थी। अब दोनों ओर मजिस्ट्रेट साहब ने मुचलका लिखवा कर लाठी चलना बन्द कर दिया है। लाठी तो बन्द हो गई, परन्तु लाठी चलानेवाले लठियलों की जगह पर बेचारा मैं नियुक्त हुआ। सब लोग कहने लगे कि मैंने लट्ठबाज़ ख़ूनियों का नाम रख लिया।

मेरे लेखों की वाक्यवर्षा से बाहरगांववालों को सर ऊंचा करना कठिन हो गया। उनकी ज़ात पर, उनके कुल पर, उनके पूर्वपुरुषों के इतिहास पर, सब पर, मैंने स्याही लेप दी।

इस समय मैं बड़े सुख से था। ख़ूब मोटा तगड़ा हो गया था। मुँह पर से हँसी हटाये न हटती थी। बाहरगांववालों के पुरखाओं पर कटाक्ष करके मैं तरह बेतरह के मर्म्मान्तिक वाक्यबाण छोड़ता और सारा ज़ाहिरगांव हँसते हँसते लोट पोट हो जाता।

अन्त में बाहरगांव से भी बाहर-मित्र नामक एक पत्र निकला। वह किसी बेढब बात को युक्ति या पेंच पांच से नहीं कहता था। वह ऐसे प्रचण्ड उत्साह से, ऐसी कोरी, महाविरेदार और ठेठ भाषा में गालियां देता कि छापे के अक्षर तक भी मानों कानों में उन गालियों को चिल्ला चिल्ला कर भरने लगते। इस लिए दोनों गांवों के लोग उसकी बातों को बहुत अच्छी तरह समझ लेते।

परन्तु, मैं, पुराने अभ्यास के अनुसार, ऐसे मज़े से, ऐसे कूट कौशल से, विपक्षियों पर आक्रमण करता था कि शत्रु-मित्र कोई भी यह न समझ सकते कि मेरी बातों का मर्म क्या है। इसका फल यह हुआ कि जीत होने पर भी लोग मेरी ही हार समझते। इससे, विवश होकर, सुरुचि के

विषय पर मैंने एक उपदेश-पूर्ण लेख लिखा। मैंने देखा, बड़ी भारी भूल मैंने कर डाली। क्योंकि जो वस्तु यथार्थ ही अच्छी है उसको हँसी उड़ाना जैसा सहज है, वैसा उपहास्य विषय की हँसी उड़ाना सहज नहीं है। हनुवंशवाले* मनुवंशवालों को जैसे सहज में हँसी उड़ा सकते हैं, मनुवंशवाले हनुवंशवालों की हँसी करके उतनी सफलता नहीं पाते। इसी लिए सुरुचि को अँगूठा दिखाकर उन लोगों ने देश से निकाल दिया है।

मेरे प्रभु अब मेरे प्रति और उतना आदर नहीं दिखाते थे। सभा समाज में भी मेरा उतना सम्मान नहीं रहा। राह में चलते समय भी लोग मुझसे नहीं बोलते थे। यहां तक हुआ कि मुझे देखकर कोई कोई हँसने भी लगे।

इतने दिनों में मेरे प्रहसनों की बात भी लोग बिलकुल भूल गये। अकस्मात् मुझे जान पड़ा कि मैं एक दियासलाई के बराबर हूं। ज़रा देर सुलग कर एक दम अन्त तक मैं जल गया हूं। मन मेरा ऐसा निरुत्साह हो गया कि सिरको कूटडालने पर भी एक पंक्ति का लेख भी उससे न निकलता। मैंने सोचा कि जीने में अब कुछ सुख नहीं है।

ललिता उस समय मुझसे डरा करती थी। बिना बुलाये एकाएक मेरे पास आने का वह साहस नहीं करती थी। वह जान गई थी कि मज़ेदार बातें लिख सकनेवाले बाप से मट्टी का खिलौना अधिक अच्छा होता है।

एक दिन मैंने देखा कि बाहरगांव का बाहर-मित्र मेरे तअल्लुकेदार को छोड़कर मेरे ही ऊपर सतुआ बांध कर उतारू हुआ है। उसने कितनी ही भद्दी भद्दी बातें छाप दी हैं। मेरे परिचित मित्र मेरे पास आये और सब कोई, एक एक कर के, मुझे वह पत्र हँसते हँसते सुना गये। कोई कोई कहने लगे कि इसका विषय चाहे जैसा हो, भाषा में अवश्य बड़ी बहादुरी दिखलाई गई है। अर्थात् भाषा से यह साफ़ जान पड़ता है कि बेतहाशा गालियां दी गई हैं। दिन भर में कोई बीस मनुष्यों के मुँह से वही बात मेरे सुनने में आई।

मेरे घर के सामने एक छोटा सा बगीचा था। सन्ध्या समय बड़े चिन्तित चित्त से मैं वहाँ अकेला घूम रहा था। पक्षिगणों ने घोंसलों में लौट कर और अपने कलरवों को बन्द करके जब स्वच्छन्दता से सन्ध्या की शान्ति में आत्मसमर्पण कर दिया, तब मैंने अच्छी तरह से समझ लिया कि पक्षियों में रसिक लेखक नहीं हैं और उनमें रुचि के विषय में तर्क नहीं होता।

मन में केवल यही सोचने लगा कि उस आक्रमण का क्या उत्तर दिया जाय। भद्रता में विशेष कठिनाई यह है कि सब कहीं के लोग उसे नहीं समझते हैं। अभद्रता की भाषा उससे अधिक परिचित है। इसीसे मैं सोचने लगा कि उसी प्रकार का एक मुहतोड़ उत्तर लिखना चाहिए। मैं किसी तरह हार नहीं मानूंगा।

ठीक उसी समय, सन्ध्याके अँधेरे में, एक छोटे से कण्ठ का स्वर मैंने सुना और साथ ही किसी कोमल और गरम सी वस्तु ने मुझे छुआ। मेरा मन उद्वेग से इतना अनमना हो रहा था कि उस क्षण उस स्वर और उस स्पर्श को जान कर भी मैंने नहीं पहचाना।

परन्तु दूसरे ही क्षण वह मधुर स्वर मेरे कान में फिर सिञ्चित हुआ। वह सुधास्पर्श मेरे कर-तल में फिर सञ्जीवित हुआ। मेरी कन्या ने धीरे धीरे मेरे पास आकर मीठे हलके स्वर से कहा—"बाबा!" कोई उत्तर न पाकर मेरे दहिने हाथ को लेकर एक बार अपने कोमल ललाट पर फेर कर वह फिर धीरे धीरे घर को लौटने लगी। ललिता ने बहुत दिनों से मुझे नहीं बुलाया था। अपनी इच्छा से आकर उसने मेरा इतना आदर बहुत दिनों से नहीं किया था। इसीसे आज उस स्नेह-स्पर्श से मेरा हृदय एकाएक बहुत व्याकुल हो उठा; वह कण्ठ तक उमड़ आया।

* वानर।

थोड़ी देर बाद मैंने घर लौटकर देखा, ललिता बिछौने पर लेटी है। शरीर क्लिष्ट हो गया है। नेत्र कुछ मुँदे से हैं। दिन के अन्त में पेड़ पर से झरे हुए फूल के समान वह पड़ी है। सिर पर मैंने हाथ रखकर देखा तो उसे बहुत गरम पाया। गरम साँस निकल रही है; ललाट पर की नसें फूल रही हैं। मैंने समझ लिया कि वह सन्ताप की तपन से कातर होकर, प्यासे अन्तःकरण से, एकबार पिता का स्नेह, पिता का प्रेमाभिषिक्त आदर, पाने गई थी। पर पिता उस समय बाहर-मित्र के लिए एक खूब कड़ा जवाब देने की कल्पना में मग्न थे।

मैं ललिता के पास जा बैठा। कुछ न बोलकर ज्वरसन्तप्त अपने दोनों करतलों से मेरा हाथ खींच कर, उस पर अपना कपोल रख, वह चुपचाप सो रही।

ज़ाहिरगाँव और बाहरगाँव के जितने पत्र थे उन सभों को लेकर मैंने जला दिया। मैंने कोई उत्तर नहीं लिखा। हार मान कर कभी किसीको इतना सुख नहीं मिला होगा।

जब कन्या की माता मर गई थी, तब मैंने उसे अपनी गोद में खींच लिया था। आज उसकी विमाता को भी आग में झोंककर, मैंने फिर उसे अपने हृदय से लगा लिया। मैं अपने देश को लौट आया। तब से, अवाच्य बकने में, 'बर्क' के बाबा की भी वक्तृत्व-शक्ति को मात करनेवाले पत्रों को मैं अपने पास तक नहीं फटकने देता।*

पार्वतीनन्दन।

मित्रपञ्चक।

[१]

आगे विनीत बनते निज कार्य से ही;
निन्दा परोक्ष करते डरते न वे ही।
बातें महामधुर नित्य नई बनाते;
ऐसे अनेक अब मित्र यहां दिखाते॥

[२]

है एक मित्र वह भी कुछ लोभ भी हो;
उत्साहयुक्त करता परकार्य भी हो।
सच्ची न किन्तु जग में वह मित्रता है,
स्वार्थानुराग रहता मन में जहां है॥

[३]

है सर्वथा न जिनके कुछ लोभ जी में;
हैं स्वार्थ जो समझते परकार्य ही में।
जो मित्र के सुख सुखी, दुख में दुखी हैं;
सच्चे सुमित्र जगतीतल में वही हैं॥

[४]

गाते परोक्ष गुण; दोष सदा छिपाते;
देते शरीर तक; लोभ कभी न लाते।
ऐसे सुमित्र हम किन्तु कहीं न पाते;
आते न दृष्टि-पथ और सुने न जाते॥

[५]

प्रायः यही गति महीतल में दिखाती;
है स्वार्थ-सिद्धि तज और न नीति भाती।
है अल्प किन्तु इसको समझो सुशिक्षा;
हे मित्र! मित्र करिये न बिना परीक्षा॥

कन्हैयालाल पोद्दार

अन्योक्ति-सप्तक।

[१]

जे मदमाते मलिन्द अनन्द भरे
बिहरे गज-गण्ड-थलीन मैं।
जे रस राते अघाय अघाय पिये
मकरन्द थलीन थलीन मैं॥
जे द्विजश्याम सुधा कै मुधा रसलीन
रसालन की अवलीन मैं।

* रवीन्द्र बाबू की कहानी का भावानुवाद।

ते अब हाय बितावत द्योस
गलीन गलीन करील-कलीन मैं ॥

[२]

ए हो नीरधर हम नेहधर चातक हैं
रटनि हमारी घटिहै न कहँ फेरि फेरि।
भौंर कैसी दौर हम दौरिहैं न ठौर ठौर
द्विजश्याम सुमन-समूहनि कौं घेरि घेरि॥
चुनिकै अँगारन चकोर तौर लैहैं नाहिँ
मोरहूं के तौर लै न नाग खैहैं हेरि हेरि।
प्यास मरि जैहैं, द्वार और के न जैहैं, योंहीं
जनम बितैहैं, नाम रावरो ही टेरि टेरि॥

[३]

ए हो भौंर बौर बौर ठौर ठौर दौरि दौरि
तौर तौर यदपि अथोर रस लीन्यो है।
द्विजश्याम सेवती कदम्बन कुसुम्भ गुम्फ
कीन्हे ते प्रसंग अंग अंग रंग भीन्यो है॥
पंकज कली की अवली की चाह नीकी करि
कुन्द मालती की मधुराई मन दीन्यो है।
पर सुधासंगी ह्वै, न छोड़िया लवङ्गलता,
प्रीति के अभङ्गी जाहि अंगी कार कीन्यो है॥

[४]

ए री लवङ्गलता सुन री द्विज
श्याम न चूक समै यह आयो।
रङ्क ज्यों पारस त्योंहीं अरी
अपने बड़े भागन ते इन्हैं पायो॥
लीजिये आदर सों झुकि कै
अरु कीजिये जो इनके मन भायो।
येई मलिन्द मरन्द सो तुन्द
जिन्है अरविन्दन शीश चढ़ायो॥

[५]

नीरस डारन पै बसि कोकिल
तौ लगि द्योस बिताइबो कीजै।
तौ लगि काकन केरो कलाकल
आकुल कानन सों सहि लीजै॥
कोऊ अबै निरधारनहार न
पारस काँच विचार लहीजै।
जौ लगि आवै वसन्त न पारखी
तौ लगि तू द्विज श्याम सहीजै॥

[६]

तेरे तो चाहनहार मलिन्द हैं
वृन्द के वृन्द सदा सुखदाई।
कौमुदिनी बक हेलन सो
करती हक नाहक तू मलिनाई॥
ये नहिँ जानते जो गुन तेरो
तूही कह तेरो कहा घटि जाई।
हे द्विज श्याम ये फेरि अरी
पछिताइहैं पीछे गँवार कहाई॥

[७]

जे मुकता मुकता-पटली-तट
लीन चुने द्विज श्याम यशोवत।
जे तिय संग सने सुख सो
तट देवतरङ्गिनी के रहे सोवत॥
जे कलपद्रुम डारन बैठि
अपारन सौरभ को सुख जोवत।
सम्प्रति तेई मराल विहाल
सेवार के जाल परे दिन खोवत॥

श्यामनाथ शर्म्मा।

सृष्टि-विचार।

परलोकवासी स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका में बड़ा नाम पैदा किया है। भक्तियोग, ज्ञानयोग, राजयोग आदि विषयों पर उनके व्याख्यान सुनकर अमेरिकावासी मुग्ध, चकित और स्तम्भित हुये हैं। स्वामीजी ही

के प्रताप से अमेरिकावाले भारतवर्ष के वेदान्त की महिमा भी कुछ कुछ जानने लगे हैं। स्वामीजी के मुख्य मुख्य व्याख्यान छप चुके हैं और, हिन्दी को छोड़कर, मराठी, गुजराती तथा बँगला आदि दूसरी भाषाओं में वे अनुवादित भी हो चुके हैं। इन व्याख्यानों के अनुवाद को प्रकाशित करने का सौभाग्य हिन्दी को अभी तक नहीं प्राप्त हुआ है। स्वामीजी के कई व्याख्यान अभी तक अप्रकाशित पड़े थे। वे अब "प्रबुद्ध-भारत" नामक अङ्गरेज़ी मासिकपत्र में निकलने लगे हैं। इनमें से एक व्याख्यान सृष्टि-विचार के विषय में है। इस व्याख्यान का भावार्थ ही हमारे इस लेख का आधार है। स्वामीजी के व्याख्यानों में यह एक विलक्षणता है कि गूढ़ से गूढ़ बातें भी समझ में आजाती हैं। महा कठिन विषयों को, उनका कुछ भी ज्ञान न रखनेवालों को भी, युक्ति से, समझाना स्वामीजी ही का काम था। देखिए, उन्होंने सृष्टि की रचना आदि का कैसा अच्छा विवेचन किया है।

जगत् दो प्रकार का है, बाहरी और भीतरी। इन दोनोंहीं प्रकार के जगतों से, हम, सच्चे सिद्धान्तों का पता, परीक्षाद्वारा, पाते हैं। परीक्षायें भी दो प्रकार की हैं, बाहरी और भीतरी। बाहरी परीक्षाओं से जो सच्चे सिद्धान्त निकलते हैं उन सिद्धान्तों के समुदाय को पदार्थ-विज्ञान विद्या कहते हैं। और भीतरी परीक्षाओं से जो सिद्धान्त निकलते हैं उनकी गिनती मनोविज्ञान और अध्यात्म विद्या में होती है। यदि कोई सिद्धान्त सब प्रकार सच्चा है तो उसके सच होने का प्रमाण बाहरी जगत् में भी मिलना चाहिए और भीतरी जगत् में भी। बाहरी विषयों का मेल भीतरी विषयों से मिल जाना चाहिए और भीतरी विषयों का मेल बाहरी विषयों से मिल जाना चाहिए। पदार्थ-विज्ञान के सच्चे सिद्धान्तों का प्रतिबिम्ब अन्तर्जगत्, अर्थात् भीतरी सृष्टि, किम्वा भीतरी जगत्, में दिखलाई देना चाहिए; और अन्तर्गत् के सच्चे सिद्धान्तों की प्रतिमा पदार्थ-विज्ञान, अर्थात् बाहरी विश्व, में दिखाई देनी चाहिए। तिस पर भी, इस समय, हम देखते हैं कि बाहरी और भीतरी—दोनों प्रकार के—सिद्धान्त परस्पर नहीं मिलते। दोनों में बहुधा परस्पर विरोध पाया जाता है। जगत् के इतिहास में एक ऐसा समय था जब भीतरी सिद्धान्त सबसे अधिक श्रेष्ठ माने जाते थे; इस लिए वे बाहरी सिद्धान्तों को दबा कर सर्वप्रधान बन बैठे थे। अब एक ऐसा समय आया है कि बाहरी जगत् के ज्ञाता, अर्थात् पदार्थ विज्ञानवादी, प्रबल हो उठे हैं; और उन्होंने मनोविज्ञान और अध्यात्मविद्या के आचार्य्यों के सिद्ध किये हुए अनेक सिद्धान्तों को असिद्ध ठहराने का यत्न किया है। जहां तक मेरी अल्प बुद्धि काम देती है, मैं समझता हूं कि मनोविज्ञान के जितने वास्तविक और सत्य सिद्धान्त हैं, वे सब, बाहरी जगत् से सम्बन्ध रखनेवाले आजकल की पदार्थ-विज्ञान विद्या के वास्तविक और सत्य सिद्धान्तों से बखूबी मिलते हैं।

ईश्वर ने प्रत्येक मनुष्य को यह शक्ति नहीं दी कि प्रत्येक विषय में वह अपना सानी न रक्खै। प्रत्येक विषय में वह अद्वितीय नहीं हो सकता। और, न ईश्वर ने प्रत्येक जाति को ही इतनी शक्ति और इतनी योग्यता दी है कि वह अकेली ही सब प्रकार की विद्या और सब प्रकार के विज्ञान में प्रधानता प्राप्त कर सके। योरपवाले, इस समय, बाहरी जगत् से सम्बन्ध रखनेवाले विज्ञान में विशेष पारदर्शी हैं; परन्तु उनके पूर्वज अन्तर्जगत् से सम्बन्ध रखनेवाली अध्यात्मविद्या में बहुत ही पीछे थे। पूर्वी देशों में रहनेवालों की दशा इससे उलटी थी। वे बाह्य जगत्, अर्थात् पदार्थविज्ञान में, विशेष कुशल न थे; परन्तु अन्तर्जगत्, अर्थात् आत्मा और मन से सम्बन्ध रखनेवाली विद्या, में वे विशेष कुशल, व्युत्पन्न और विज्ञ थे। इसीलिए पूर्वी देशों का पदार्थ-विज्ञान शास्त्र पश्चिमी देशों के पदार्थ-विज्ञान शास्त्र से नहीं मिलता। और, इसीलिए, पश्चिमी देशों की अध्यात्मविद्या पूर्वी

देशों की अध्यात्मविद्या से भी नहीं मिलती। परन्तु दोनों देशों के विज्ञानियों के सिद्धान्त ठीक हैं। ठीक इसलिए हैं कि सत्य ही का अवलम्बन करके वे स्थिर किये गये हैं। इसलिए, जैसा हम ऊपर कह आये हैं, सच्चे और वास्तविक सिद्धान्त, चाहे वे जिस विद्या से सम्बन्ध रखते हों, परस्पर विरोधी न होने चाहिएं। उन सबका मेल मिल जाना चाहिए। अन्तर्जगत् के सिद्धान्त बाह्य जगत् के सिद्धान्तों के प्रतिकूल न होने चाहिएं; और बाह्य जगत् के सिद्धान्त अन्तर्जगत् के प्रतिकूल न होने चाहिएं।

आज कल के पदार्थ-विज्ञानवादी और ज्योतिषियों ने सृष्टि के सम्बन्ध में जो कल्पनायें, जो मत, जो सिद्धान्त स्थिर किये हैं उनको हम लोग जानते हैं। हम सब लोग यह भी जानते हैं कि वे मत और वे सिद्धान्त योरप के वेदान्तियों के दिल को कैसा दुखाते हैं; विज्ञान-सम्बन्धी छोटे से छोटे आविष्कार भी, बम के गोले के समान, उनके घर पर कैसा गिरते हैं; और वे इन वैज्ञानिक परीक्षाओं और आविष्कारों को तुच्छ सिद्ध करने का हमेशा कैसा यत्न किया करते हैं। हम, आज, यहां पर, भरतखण्ड के आचार्य्यों की मनोविज्ञान विद्या के अनुसार यह दिखलाना चाहते हैं कि सृष्टि के सम्बन्ध में उनके विचार कैसे थे। उनको सुनकर आपको बड़ा आश्चर्य्य होगा। आप देखेंगे कि आज कल के नवीन से नवीन आविष्कारों के साथ, उन का मेल कैसी विलक्षणता से मिलता है। जहां कहीं, किसी बात की कमी पाई जायगी, वहां आप देखेंगे कि वह कमी आजकल के विज्ञान में है; आजकल के सिद्धान्तों में है; भारतवर्ष के प्राचीन सिद्धान्तों में नहीं।

हम लोग सब 'नेचर' शब्द को काम में लाते हैं। 'नेचर' का अर्थ आदि-शक्ति अथवा आदि-माया है। संस्कृत विद्या के प्राचीन विद्वानों ने इस 'नेचर' शब्द के भावार्थसूचक दो नाम रक्खे हैं। एक प्रकृति जो 'नेचर' शब्द का अनेक अंश में समानार्थक है। दूसरा अव्यक्त। जिसका भेद न हो सके, जो प्रत्यक्ष न देखा जा सके, उसे अव्यक्त कहते हैं। अव्यक्त ही से सब कुछ व्यक्त होता है—निकलता है। तत्व, परमाणु, पदार्थ, शक्ति, मन, मनोव्यापार और बुद्धि इत्यादि की उत्पत्ति उसीसे होती है। भारतवर्ष में अध्यात्म विद्या के जाननेवाले तत्वज्ञानी मुनियों ने, हज़ारों वर्ष हुए, यह कह दिया था कि मन भी एक भौतिक पदार्थ है। इस बात को सुनकर पश्चिमी विद्वान् चौंक पड़ते हैं। इस समय के पश्चिमी देहात्मवादी, अर्थात् देह ही को सब कुछ समझनेवाले, क्या करने का यत्न कर रहे हैं? वे इस बात को सिद्ध करने का यत्न कर रहे हैं कि जैसे देह प्रकृति से उत्पन्न हुई है वैसे ही मन भी प्रकृति से उत्पन्न हुआ है। मनोव्यापार, अर्थात् विचार, भी प्रकृति ही से सम्बन्ध रखते हैं। क्रम क्रम से हमको इसका भी ज्ञान हो जायगा कि बुद्धि भी प्रकृति ही से उत्पत्ति पाती है। प्राचीन योगियों ने प्रकृति अथवा अव्यक्त को तीन प्रकार की शक्तियों का समान-स्थल माना है। इन शक्तियों का नाम सत्व, रज और तम है। तम सबसे अधम शक्ति है; उससे सांसारिक वस्तुओं की ओर मन का आकर्षण होता है। तम से रज का स्थान कुछ ऊंचा है; उसके योग से मन सांसारिक वस्तुओं से हट जाता है। सत्व सबसे ऊंचा है; वह तम और रज दोनों को अपने वश में रखता है। अर्थात् मन को वह न तो संसार की ओर झुकाता ही है और न उससे हटाता ही है। इसलिए, खिँच जाना और हट आना, ये जो दो शक्तियां हैं, वे जब सत्व के बल से स्तम्भित हो जाती हैं तब जगत् में सब चल विचल बन्द हो जाती है; सृष्टि के क्रम में विच्छेद हो जाता है; कुछ भी उत्पन्न नहीं होता। जब तक सत्व का असर रज और तम पर बराबर रहता है तब तक सृष्टि नहीं होती; ज्यों ही उसके बल में अन्तर आया त्यों ही रज और तम में से एक दूसरे से अधिक सशक्त हो उठा; चाञ्चल्य आरम्भ हुआ;

और सृष्टि का क्रम फिर पहले का सा हो गया। कालचक्र के अनुसार यह दशा, समय समय पर, हुआ करती है। अर्थात् सत्व की तुल्य-बलता में कभी कभी बाधा आ जाती है। तुल्य-बलता में विघ्न पड़ते ही ये सब शक्तियां फिर एक दूसरे से मिल जाती हैं और उनके मेल से उत्पत्ति पाकर यह जगत्, किम्वा जगत् के पदार्थों का समुदाय, फिर प्रकट हो जाता है। इसके साथ ही यह भी है कि जितने पदार्थ हैं उन सबका झुकाव सत्व की तुल्य-बलता की ओर रहता है। क्योंकि उनकी स्वाभाविक अवस्था वही है। इसलिए एक न एक दिन वे फिर उस दशा को पहुँच जाते हैं और उनके वहां पहुँचते ही प्रलय हो जाती है; सारी सृष्टि ध्वंस हो जाती है। कुछ काल के अनन्तर, फिर, स्वाभाविक स्थिति में विघ्न पड़ता है; उत्पन्न होकर, फिर, सृष्टि धीरे धीरे तरङ्गवत् बाहर निकल आती है। जितनी हलचल है, जितने पदार्थ जगत् में हैं, सब तरङ्गों के रूप में हैं। उनकी उन्नति और अवनति हुआ ही करती है।

किसी किसी तत्ववेत्ता का यह मत है कि कुछ काल के लिए सारी सृष्टि ध्वंस हो जाती है। परन्तु कोई कोई कहते हैं कि सारी सृष्टि एक साथ ही ध्वंस नहीं होती; किन्तु एक एक लोक एक एक बार ध्वंस होते हैं। अर्थात् जिस समय हमारे इस सूर्य से सम्बन्ध रखनेवाला लोक विध्वंस होकर अपनी पहले की अव्यक्त स्थिति को पहुँच जायगा, उस समय, इसके समान और करोड़ों लोक अव्यक्त स्थिति से बाहर निकले रहैंगे। अर्थात् उनका पूरा विकास रहैगा। उनकी सृष्टि में ज़रा भी बाधा न आवैगी। यह दूसरा ही मत हमैं पसन्द है। हम भी यही समझते हैं कि यह ध्वंस सारी सृष्टि का एक ही साथ नहीं होता। भिन्न भिन्न लोकों की भिन्न भिन्न अवस्था रहती है। परन्तु सृष्टि का नियम एक ही है। प्रकृति का समय समय पर विकास और लय हुआ करता है। जब प्रकृति अपनी पूर्वावस्था को पहुँच जाती है, अर्थात् जिस समय सत्व का तुल्य-बलत्व रहता है, उस अवस्था का नाम प्रलय है। भारतवर्ष के ईश्वरवादी महात्माओं ने प्रकृति के इस विकास और लय को, यथाक्रम, ईश्वर का श्वास और उच्छ्वास माना है। अर्थात् अपने श्वास के साथ ईश्वर इस सृष्टि को बाहर प्रकट कर देता है; और उच्छ्वास के साथ उसे फिर अपनी कुक्षि में लीन कर लेता है। ध्वंस अथवा लीन होने पर इस सृष्टि का क्या होता है? वह परमाणुरूप में वहीं रहती है। वह अपने कारण में लीन हो जाती है। कारण और काल का बन्धन उसे लगा ही रहता है; उनसे उसे छुटकारा नहीं मिलता। मान लीजिये कि यह सारी सृष्टि—जितने लोक हैं सब साथ ही—लय होने के लिए सिकुड़ने लगे, और सिकुड़ कर यहां तक छोटे हो गये, कि हम लोग एक कण अथवा परमाणु के समान हो गये तो हमको इस परिवर्तन का—इस लय का—कुछ भी ज्ञान न होगा; क्योंकि हम से सम्बन्ध रखनेवाले जितने पदार्थ हैं वे सब एक ही साथ सिकुड़कर छोटे हो जायँगे। जो कुछ है वह सब, इसी प्रकार, लय को प्राप्त हो जाता है; और यथा समय फिर उत्पन्न होता है। कारण का नाश नहीं होता। कारण से फिर कार्य की उत्पत्ति होती है; और यह उत्पत्ति और लय सदा इसी भाँति हुआ करता है।

सृष्टि का सबसे अधिक आश्चर्यकारक अंश वह है जिसे हम लोग, इस समय, स्थूल पदार्थ कहते हैं। अध्यात्म विद्या के जाननेवाले प्राचीन पण्डित स्थूल पदार्थों को भूत कहते थे। भूत का भावार्थ है बाहरी तत्व। उनके मत में एक तत्व नित्य है; उसका नाश नहीं होता। दूसरे तत्व इसी एक से निकलते हैं। इस तत्व का नाम आकाश है। आजकल के विद्वान् जिसे ईथर कहते हैं उसके और आकाश के अर्थ में बहुत कुछ समता है; परन्तु दोनों का अर्थ बिलकुल ही एक नहीं है। इस आकाश तत्व के साथ कुछ और भी रहता है। उसे प्राण कहते हैं। प्राण के विषय में हम आगे

विस्तारपूर्वक कहेंगे। यह आकाश और यह प्राण नित्य हैं। उनका नाश नहीं होता। वे मिलते हैं; फिर मिलते हैं; और फिर मिलते हैं; और सब तत्व—सब भूत—उन्हींसे बनते हैं। कल्प के अन्त में सारे तत्व घटकर परमाणुमय हो जाते हैं और इसी आकाश और इसी प्राण में, अर्थात् जहां से आये थे, लौट जाते हैं। ऋग्वेद सबसे पुराना ग्रन्थ है। उससे अधिक पुराना ग्रन्थ संसार में नहीं है। उसमें एक जगह सृष्टि का बहुत ही अच्छा वर्णन है। यह वर्णन कविता के समान हृदयग्राही और सुन्दर है। वहां लिखा है—"जिस समय किसी पदार्थ का अस्तित्व अथवा अनस्तित्व न था; जिस समय अन्धकार, अन्धकार ही के ऊपर लहरें ले रहा था; उस समय क्या था?" इस प्रश्न का वहीं उत्तर भी है कि—"वह, उस समय, निश्चल था"। यह प्राण उस समय था; परन्तु, उसमें किसी प्रकार की चल विचल न थी, उसका आन्दोलन बन्द हो गया था। उसमें तरङ्गों का उठना बन्द हो गया था। अनन्त समय बीत जाने पर जब कल्प का आरम्भ होता है, तब उसमें आन्दोलन उत्पन्न होता है; उसमें कम्प होता है। कम्प अथवा आन्दोलन उत्पन्न होने पर लहरें उठने लगती हैं और उनके द्वारा प्राण आकाश को, एक के पीछे एक, अनगिनत धक्के देता है। इन धक्कों से सूक्ष्म परमाणु घने हो जाते हैं; और जैसे जैसे उनमें घनता आती जाती है वैसे ही वैसे भिन्न भिन्न तत्वों की उत्पत्ति होती जाती है। हम लोग इन बातों का भाषान्तर प्रायः बड़ी ही विलक्षणता से किया हुआ, कहीं कहीं, देखते हैं। भाषान्तर करनेवाले न तो तत्ववेत्ताओं ही की सहायता की परवा करें और न भाष्यकारों ही के किये अर्थ की तरफ़ देखें। और वे स्वयं इतनी बुद्धि नहीं रखते कि इन बातों को अच्छी तरह समझ सकें। मूढ़ और मन्द-मति लोग संस्कृत के दो चार शब्द सीखते हैं और ग्रन्थों का अनुवाद करने लगते हैं। वे तत्वों का अनुवाद अग्नि, जल, वायु आदि करते चले जाते हैं। यदि वे भाष्यकारों की टीकायें पढ़ें और उनके समझने का यत्न करें तो उन्हें मालूम हो जाय कि वहां अग्नि और वायु आदि से अभिप्राय नहीं है।

प्राण जब बल-पूर्वक धक्के देने लगता है तब आकाश से तरङ्गें उठने लगती हैं। ये तरङ्गें ही वायु है। इसी प्रकार वायु में भी आन्दोलन होने लगता है और क्रम क्रम से वेग बढ़ते जाने के कारण परमाणु एक दूसरे से रगड़ खाते हैं। इस घर्षण से आग उत्पन्न हो जाती है। आग से परमाणु पिघल उठते हैं और उन द्रवीभूत परमाणुओं से पानी की उत्पत्ति होती है। पानी जम कर सान्द्रता—घनता—पैदा करता है। इसी घनता से नाना प्रकार के द्रव्य—पदार्थ—उत्पन्न होते हैं। आकाश में आन्दोलन उत्पन्न होने से वायु की सृष्टि हुई। वायु से अग्नि हुई। अग्नि से जल हुआ। जल से द्रव्य हुए। यह उत्पत्ति का क्रम है। जिस प्रकार यह सृष्टि उत्पन्न होती है, ठीक उसी प्रकार वह नष्ट भी हो जाती है। जितने द्रव्य हैं सब, किसी समय, पिघल कर आग हो जायँगे। आग में आन्दोलन अर्थात् तरङ्ग उत्पन्न होंगे। ये तरङ्ग जब बन्द हो जायँगे तब इस कल्प का लय हो जायगा। यथा समय यह, फिर, उत्पन्न होगा और फिर आकाश में लीन हो जायगा। इसी प्रकार उत्पत्ति और लय होता रहता है। आजकल के ज्योतिषी कह रहे हैं कि इस सूर्य और इस पृथ्वी की अवस्था में ऐसा ही अन्तर हो रहा है। यह हमारी सान्द्र और सघन पृथ्वी, किसी दिन, गल कर द्रव हो जायगी और द्रव होकर, यथा क्रम, अपने पूर्वस्थान, आकाश में, पहुँच जायगी। आकाश की सहायता के बिना प्राण कुछ नहीं कर सकते। प्राणों का काम केवल आन्दोलन उत्पन्न करना है। वे केवल चल विचल उत्पन्न करनेवाले हैं। जितनी शक्तियाँ हैं, जितने विचार हैं, जितनी चञ्चलता है, सब प्राणों की करतूत है। और जितने शरीरवान् पदार्थ हैं, जितने जड़ द्रव्य

हैं, सब आकाश के रूपान्तर हैं। प्राण अकेले नहीं रह सकते; और एक मध्यस्थ के बिना कुछ कर भी नहीं सकते हैं। प्राण, अपनी प्रत्येक अवस्था में, जब वे विशुद्ध प्राण हैं और किसीसे कुछ सरोकार नहीं रखते हैं, तब स्वयं आकाश ही के भीतर रहते हैं। जब वे गुरुत्वाकर्षण और केन्द्र-त्यागी आदि प्राकृतिक शक्तियों के रूप में देखे जाते हैं तब उनके साथ स्थूल द्रव्य अर्थात् शरीर-वान् पदार्थ अवश्य रहते हैं। आपने शक्ति को साकार वस्तु के बिना कभी न पाया होगा; और न साकार वस्तु ही को शक्ति के बिना पाया होगा। इन दोनों का अन्योन्याश्रय है। जिन्हें हम शक्ति और साकार वस्तु कहते हैं वे इन्हीं सूक्ष्म प्राण और आकाश के इन्द्रिय-गोचर रूपान्तर हैं। प्राणों को आप अङ्गरेज़ी में जीवन कह सकते हैं—सजीव शक्ति कह सकते हैं। परन्तु मनुष्य ही के जीवन तक आप उनकी सीमा न कर दीजिए; और अङ्गरेज़ी शब्द 'स्पिरिट' अर्थात् आत्मा से भी आप उन्हें अलग रखिए। आत्मा और प्राणों में अन्तर है।

सृष्टि आदि और अन्तहीन है। वह होती है और यथासमय आकाश में लीन हो जाया करती है। न उसका आदि है न उसका अन्त। वह सतत है।

इस विषय में एक बात बड़े मज़े की याद आई है। योरप के कोई कोई तत्ववेत्ता कहते हैं कि हम लोगों के होने ही से यह जगत् है; अर्थात् जगत् का अस्तित्व हमारे अस्तित्व के ऊपर अवलम्बित है। यदि हम न हों तो यह जगत् भी न रहे! यही बात, बहुधा, एक और ही प्रकार से कही जाती है। ये तत्ववेत्ता कहते हैं कि यदि जगत् में रहनेवाले सब मनुष्य मर जायँ; कोई सज्ञान और इन्द्रियविशिष्ट मनुष्य और दूसरे जीव न रहें, तो सृष्टि का भी क्षय हो जाय! ऐसा कहना सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध है। उसे असत्य सिद्ध करना बहुत ही सरल बात है। परीक्षाओं और प्रमाणों से इस मत की असारता सिद्ध कर दी गई है। योरप के तत्ववेत्ता सृष्टि के लय और सृष्टि की उत्पत्ति के नियमों को तो जानते हैं; परन्तु तत्वविद्या को ठीक ठीक नहीं जानते; उस के सूक्ष्म सिद्धान्तों को नहीं जानते। उसकी थोड़ी सी झलक भर उनको मिल गई है।

भारतवर्ष के पुराने तत्वदर्शी विद्वानों के विषय में हम पहले एक और ही बात का विचार करना चाहते हैं। ये महात्मा कहते हैं कि जितने स्थूल पदार्थ हैं सब सूक्ष्म परमाणुओं से बने हैं। स्थूल रूप में जो कुछ साकार है, शरीरी है, देह-विशिष्ट है, सब परमाणुओं के मेल से उत्पन्न हुआ है। इन परमाणुओं का नाम है तन्मात्रा। हम एक फूल सूँघ रहे हैं। हमारी नाक से वह कुछ दूर पर है। उसके सुगन्ध का ज्ञान होने के लिए हमारी नाक से किसी पदार्थ का स्पर्श अवश्य होना चाहिए। फूल जहां था वहीं है। वह हमारी ओर चलकर आता हुआ नहीं दिखाई देता। इसलिए बिना किसी वस्तु का नाक से स्पर्श हुए फूल की सुगन्धि का ज्ञान हमको नहीं हो सकता। और सुगन्ध तो आ रही है। अतएव नाक को कुछ अवश्य स्पर्श करता है। जो वस्तु फूल से आती है और नाक को स्पर्श करती है वही तन्मात्रा है। वही फूल के सूक्ष्म परमाणु हैं। ये परमाणु इतने सूक्ष्म हैं कि यदि लाखों वर्ष तक वे निकलते रहें तो भी फूल का अत्यल्प अंश भी कम न हो। प्रकाश के लिए भी यही कहा जा सकता है; उष्णता के लिए भी यही कहा जा सकता है; और संसार की सभी वस्तुओं के लिए यही कहा जा सकता है। इन तन्मात्राओं के भी विभाग किये जा सकते हैं। और उन विभागों के भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म विभाग किये जा सकते हैं। भिन्न भिन्न आचार्य्यों के भिन्न भिन्न मत हैं। तात्पर्य्य सबका एक ही है। इस लिए इस विषय में हम और अधिक कहने की आवश्यकता नहीं समझते। हमारे लिए इतना ही जानना काफ़ी है कि जितने स्थूल पदार्थ हैं सब



महाराजा सवाई जयसिंह ।

बहुत ही छोटी छोटी वस्तुओं के योग से बने हैं। पहले स्थूल पदार्थ हैं; उनको हम स्पर्श भी कर सकते हैं। फिर सूक्ष्म पदार्थ हैं; वे हमारी इन्द्रियों को स्पर्श करते हैं; नाक, कान, आँख आदि का उनसे संयोग होता है। आकाश-व्यापी "ईथर" की लहरें हमारी आँखों को स्पर्श करती हैं। वे हमको देख नहीं पड़ती हैं; परन्तु हम यह जानते हैं कि आँखों को उनका स्पर्श होना ही चाहिए। बिना उनके स्पर्श के हम प्रकाश अथवा और किसी वस्तु को देख ही नहीं सकते। क्योंकि, प्रकाश की उत्पत्ति 'ईथर' की लहरों ही से है। इन तन्मात्राओं का क्या कारण है? अध्यात्म विद्या के जानने वाले हमारे प्राचीन आचार्य्य इसका बड़ा ही अद्भुत और अचम्भे में डालनेवाला उत्तर देते हैं। वे इन तन्मात्राओं का कारण आत्म-ज्ञान अथवा अन्तर्बोध बतलाते हैं। वही इन सूक्ष्म परमाणुओं का कारण है; वही हमारी इन्द्रियों का भी कारण है।

अच्छा, ये इन्द्रियां क्या वस्तु हैं? देखिए, ये हमारी आँखें हैं; परन्तु देखने का काम आँखों का नहीं है। मस्तिष्क में जो ज्ञानागार है उसे निकाल डालिए; आँखें जहां की तहां बनी रहेंगी; आँखों के परदे सब यथास्थित रहेंगे; पदार्थों का चित्र भी उन पर खिँचता रहेगा; परन्तु, तिस पर भी, आँखों को कुछ न देख पड़ेगा। इसलिए देखने की इन्द्रिय नेत्र नहीं; नेत्रों का होना गौण है; नेत्र, देखने में, सहायता ही भर देते हैं। देखने की इन्द्रिय ज्ञानतन्तु हैं। ज्ञानतन्तुओं का अधिष्ठान मस्तिष्क में है। आँखों के समान नाक भी एक यन्त्र है। सुगन्ध प्राप्त कराने में वह सहायता भर देती है; पर सुगन्ध ज्ञान की असल इन्द्रिय भी ज्ञानतन्तु हैं। नाक, कान, आदि अवयव बाहर से देखने भर के लिए हैं। भिन्न भिन्न प्रकार के ज्ञानों का अनुभव करानेवाले तन्तु जुदे ही हैं। वही ज्ञानवाहक तन्तु सच्ची इन्द्रियां हैं।

आँख के लिए एक, कान के लिए दूसरी, नाक के लिए तीसरी—ऐसे ही और भी—इन्द्रिय होने की क्या आवश्यकता है? एक ही से सबका काम क्यों नहीं चलता? क्योंकि, ऐसा होना सम्भव ही नहीं। यदि एक ही से सबका काम निकल जाता तो, जब मन का योग एक वस्तु से होता, तब सारी इन्द्रियां अपना अपना काम करती रहतीं; अर्थात् सब इन्द्रियों को एक वस्तु का साथ ही ज्ञान होता। इसे हम ज़रा अधिक स्पष्ट करके कहते हैं। देखिए, हम आपसे बात चीत कर रहे हैं और आप सुन रहे हैं; इस समय, आपको यह ख़बर नहीं है कि यहां पर और क्या हो रहा है। क्योंकि आपके मन ने सुनने की इन्द्रिय के साथ संयोग कर लिया है और देखने की इन्द्रिय से अपना सम्बन्ध तोड़ दिया है। यदि एक ही इन्द्रिय होती तो मन साथ ही सुनता भी और देखता भी; वह साथ ही सुनता भी, देखता भी और सूँघता भी; ये सब बातें साथ ही न करना उसके लिए असम्भव हो जाता। यही कारण है जो प्रत्येक इन्द्रिय के लिए पृथक् पृथक् अवयव बनाये गये हैं। प्राणियों [illegible]-सम्बन्धिनी अर्वाचीन विद्या से यह बात सिद्ध है। इस बात को हम ज़रूर मानते हैं कि हम साथ ही सुन भी सकते हैं, और देख भी सकते हैं। परन्तु इसका कारण यह है, कि जब ऐसा होता है, तब मन का कुछ संयोग देखने की इन्द्रिय से रहता है और कुछ सुनने की इन्द्रिय से। उसका योग बँट जाता है। इसलिए ऐसा होता है।

ये इन्द्रियां हैं क्या पदार्थ? आँख, कान, नाक आदि अवयव स्थूल (साकार—भौतिक) पदार्थों से बने हैं। उनकी इन्द्रियां भी भौतिक अर्थात् स्थूल पदार्थों से बनी हैं। ज्ञानतन्तुओं के रूप में मस्तिष्क उनकी निवास-भूमि है। भिन्न भिन्न प्रकार की भौतिक शक्तियों में प्राणों को परिणत करने के लिए जैसे यह शरीर भौतिक पदार्थों से बना है, वैसे ही ज्ञानात्मक सूक्ष्म शक्तियों में प्राणों को परिणत करने के लिए ये इन्द्रियां भी आकाश, वायु, तेज आदि तत्वों से बनी हैं। मन को मिला

कर इन सब इन्द्रियों का नाम है लिङ्ग शरीर अथवा सूक्ष्म शरीर। लिङ्ग शरीर आकारवान् है; क्योंकि जो कुछ भौतिक पदार्थों से बनता है उसका आकार अवश्य होता है।

इन्द्रियों के आगे, अर्थात् उनके अनन्तर, मन है। चित्त की आन्दोलिनी, किम्वा अनस्थिर, किम्वा तरङ्गवती वृत्ति का नाम मन है। मन, चित्त की चञ्चला वृत्ति है। यदि आप तालाब में पत्थर फेंकेंगे तो, फेंकने के साथ ही, पानी में पहले आन्दोलन उत्पन्न होगा और फिर प्रतिबन्ध। ज़रा देर पानी कम्पित होगा और कम्पित होकर पत्थर की प्रतिबन्धकता करने लगेगा; पत्थर को रोकने लगेगा। चित्त पर जब किसी वस्तु का चिन्ह होने लगता है अर्थात् उसपर उसका ठप्पा उठने लगता है, तब उसमें स्पन्दन होता है, अर्थात् वह कुछ कँप सा उठता है—वह कुछ तरङ्गित सा हो जाता है। इसी तरङ्गित, इसी कम्पित, इसी स्पन्दित, इसी आन्दोलित अवस्था को मन कहते हैं। विविध भाँति के ज्ञान की प्रतिमाओं को, मन, और भीतर ले जाकर, बुद्धि को देता है। बुद्धि के आगे अहङ्कार है। अहङ्कार का अर्थ है आत्म-सज्ञानता, किम्वा आत्म-वृत्ति। 'अहं,' 'मैं,' 'हम' शब्द उसीके सूचक हैं। अहङ्कार के आगे महत् है। महत् अर्थात् सूक्ष्म बुद्धि (विज्ञता—सदसद्विचार-शक्ति) प्रकृति के अस्तित्व का सबसे अधिक श्रेष्ठ रूप है। इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहङ्कार और महत्, इनमें से प्रत्येक, अपने से पहलेवाले का परिणाम है। तालाब के उदाहरण में, जितने आघात होते हैं, सब बाहर से आते हैं। परन्तु मनोरूपी तालाब में बाहर से भी धक्के लग सकते हैं और भीतर से भी। महत् के आगे पुरुष अर्थात् आत्मा है। वह विशुद्ध है। वह सब प्रकार पूर्ण है। वही द्रष्टा है; वह अकेला ही सब कुछ देखता है। उसीके लिए ये सब इतने झंझट हैं।

आत्मवान् मनुष्य खड़े खड़े संसार के सब व्यापार देखता है। स्वभाव से वह मलिन नहीं है; स्वभाव से वह अविशुद्ध नहीं है। मलिनता का केवल आरोप उसपर है। अध्यास, आभास अथवा प्रतिबिम्ब को देखकर उसपर अविशुद्धता का आरोप किया जाता है। स्फटिक के पास जवा पुष्प रखने से जैसे स्फटिक का भी रङ्ग लाल दिखाई देने लगता है, वैसे ही मलिन वस्तुओं के आभास से आत्मा भी मलिनता-युक्त भासित होता है। वास्तव में न स्फटिक ही लाल है और न आत्मा ही मलिन है। मान लीजिए कि आत्मायें अनन्त हैं; और प्रत्येक आत्मा पूर्ण और विशुद्ध है। परन्तु नाना प्रकार के स्थूल और सूक्ष्म भौतिक पदार्थ अपने अपने आभास से, अपने अपने प्रतिबिम्ब से, उसे रङ्ग विरङ्गा बना रहे हैं। यह क्यों ऐसा होता है? प्रकृति क्यों ऐसे खेल खेलती है? आत्मा की उन्नति ही के लिए प्रकृति यह सब करती है। यह सारी सृष्टि आत्मा की भलाई ही के लिए है। यह इसलिए है, कि जिसमें आत्मा इन सब झगड़ों से मुक्त हो जाय; जिसमें फिर कभी उसपर कोई रङ्ग न चढ़े। यह संसार एक प्रचण्ड पुस्तक है। वह मनुष्य के सामने फैलाकर इसलिए रक्खी गई है, जिसमें मनुष्य उसे पढ़े, और अपनी मायाजनित मूर्खता से छुटकारा पाकर, अन्त में, सर्वज्ञ और सर्व-शक्तिमान् होकर, संसाररूपी पुस्तक को बन्द करके, उससे वह अलग हो जाय।

हम यहां पर आपसे एक बात कहना चाहते हैं। वह यह है कि अध्यात्मविद्या के जाननेवाले हमारे कोई कोई प्रसिद्ध आचार्य्य ईश्वर के अस्तित्व को उस प्रकार नहीं मानते जिस प्रकार आप मानते हैं। भारतवर्ष की अध्यात्मविद्या के जाननेवाले महात्माओं में कपिल पिता के तुल्य हैं। वे ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते। उनके मत में पौरुषेय अर्थात् व्यक्तिभूत ईश्वर की बिलकुल आवश्यकता नहीं है; अकेली प्रकृति ही सब कुछ कर सकती है। परन्तु वे एक विशेष प्रकार का ईश्वर मानते हैं। वे कहते हैं, कि हम सब लोग मुक्त होने के लिए, हज़ारों यत्न करते हैं। यदि हम

मुक्त हो जायँ तो, एक निश्चित काल तक के लिए, हम प्रकृति में लीन हो सकते हैं। लीन रहने का समय बीत जाने पर हम फिर प्रकृति से बाहर निकल आ सकते हैं और उसके स्वामी हो सकते हैं; उसपर अपनी सत्ता चला सकते हैं। फिर वह हमारा कुछ नहीं कर सकती। इस अवस्था को प्राप्त होने पर हम सर्वज्ञ और सर्व-शक्तिमान् हो सकते हैं; और सर्वज्ञता तथा शक्तिमत्ता के अर्थ में ईश्वर कहलाये जा सकते हैं। हम भी, आप भी और एक महातुच्छ मनुष्य भी, इस प्रकार जुदे जुदे कल्पों में, ईश्वर हो सकते हैं। कपिल जी कहते हैं कि ऐसा ईश्वर कुछ काल के लिए हो सकता है, अनन्त काल के लिए नहीं। सर्वज्ञ और सर्व-शक्तिमान् अविनाशी ईश्वर सदा के लिए नहीं हो सकता। ईश्वर यदि अविनाशी और नित्य माना जाय तो इस मानने में एक बड़ी भारी कठिनाई आ पड़ती है। वह यह कि, ऐसा ईश्वर या तो बद्ध होगा, या मुक्त। जो ईश्वर सब प्रकार के प्राकृतिक बन्धनों से मुक्त है वह सृष्टि की रचना के झंझट में कभी न पड़ेगा; क्योंकि उसके लिए सृष्टि-रचना की कोई आवश्यकता नहीं। और यदि वह सांसारिक बन्धनों से बद्ध है तो वह सृष्टि की रचना कर ही न सकेगा; वह स्वयं अशक्त होगा। इसलिए ऐसे सर्वज्ञ और ऐसे सर्व-शक्तिमान् ईश्वर का होना असम्भव है जो नित्य अर्थात् अविनाशी हो। अतएव, आचार्य कपिल का मत है, कि हमारे दार्शनिक और धार्मिक ग्रन्थों में जहां ईश्वर शब्द आया है वहां उन मानुषिक जीवात्माओं से मतलब है जो मुक्त होगये हैं। जितने मनुष्य-जातीय प्राणी हैं, सबका लय होकर, किसी समय, एक महान् मानवी प्राणी हो सकता है।

सांख्य के आचार्य कपिल सब आत्माओं की एकरूपता पर विश्वास नहीं करते। उनकी विवेचना अपूर्व है। भरतखण्ड के दार्शनिक महात्माओं में वे पिता के तुल्य माने जाते हैं। बौद्ध दर्शन, तथा और भी जो कुछ है सब उन्हीं के विचारों का परिणाम हैं। उनके सिद्धान्त को बौद्ध लोगों ने ग्रहण कर लिया है; इसी लिए वे कहते हैं कि केवल आत्मायें ही मुक्त होंगी।

सांख्य के अनुसार सब आत्मायें मुक्त हो सकती हैं और मुक्त होकर अपनी सर्वज्ञता और सर्व-शक्तिमत्ता को प्राप्त कर सकती हैं। इस बात का विचार करने से यह प्रश्न उठता है कि आत्माओं को यह बन्धन कब और कहां से मिला? सांख्यकार कहते हैं कि यह बन्धन अनादि है। यदि इसका आदि नहीं है तो अन्त भी न होना चाहिए। और यदि यह बन्धन अनादि और अनन्त है तो उससे छुटकारा भी कभी नहीं हो सकता। वे कहते हैं कि यह अनादि सम्बन्ध सतत नहीं है; बराबर लगातार नहीं है। प्रकृति अवश्य अनादि और अनन्त है; परन्तु आत्मा को उसी प्रकार अनादि अनन्त नहीं कह सकते। प्रकृति में एकत्व नहीं है; व्यक्तित्व नहीं है; अविभक्तता नहीं है। उसमें अनेकता का भाव विद्यमान है। प्रकृति की उपमा नदी से दी जा सकती है। नदी में सदैव नया पानी आया करता है और जितना पानी आता है उसके समूह का नाम नदी है। उसके पानी का परिवर्तन हुआ करता है; वही पानी उसमें हमेशा नहीं रहता। प्रकृति का भी यही हाल है। प्रकृति में जो कुछ है उसमें हेर फेर हुआ ही करता है; परन्तु आत्मा में कोई हेर फेर नहीं होता। इस लिए परिवर्तनशील प्रकृति के बन्धन से, अपरिवर्तनशील अर्थात् सदा एक रस रहनेवाला, आत्मा छूट सकता है।

इस विषय में सांख्यकार का एक सिद्धान्त बड़ा ही अनोखा है। वे कहते हैं कि यह अनन्त सृष्टि उसी नियम, उसी कल्पना, उसी अनुसन्धान के अनुसार रची गई है जिसके अनुसार मनुष्य अथवा एक छोटे से छोटे प्राणी की रचना होती है। जिस प्रकार मनुष्यों में मन है, उसी प्रकार सृष्टि में भी मन है। जब यह सृष्टि उत्पन्न होती है तब वही पदार्थ इसमें अवश्य होने चाहिए। वही पदार्थ अर्थात् पहले महत्, फिर अहङ्कार, फिर

इन्द्रिय, फिर सूक्ष्म पदार्थ, फिर स्थूल पदार्थ, फिर जगत्। सांख्य के अनुसार इस समग्र सृष्टि का एक शरीर है, एक पिण्ड है। उसमें हम पहले स्थूल पदार्थ देखते हैं, फिर सूक्ष्म; उनके आगे सर्वव्यापी चित्त; उसके आगे सर्व-साधारण अहन्ता अर्थात् अहङ्कार; उसके आगे सर्वात्मिका बुद्धि। यह सब प्रकृति के भीतर है; यह सब प्रकृति का प्रसार है; यह सब प्रकृति का प्रतिबिम्ब है। इसमें से कुछ भी उसके बाहर नहीं। हमलोगों में से प्रत्येक मनुष्य इस अद्भुत प्रकृति का, इस अद्भुत सृष्टि का, एक अंश है। उत्पन्न होकर यह सृष्टि अनन्त भागों में बँट जाती है। इसी लिए मनुष्य, पशु, पक्षी, नदी, पर्वत आदि, स्थावर जङ्गम दोनों विभागों के, अनन्त रूप देखे जाते हैं। हमने अपना स्थूल शरीर अपने पूर्वजों से पाया है; इस लिए हम में जो सज्ञानता है वह हमारे पूर्वजों की सज्ञानता ही का अंश है। इस सज्ञानता के भाग विभाग होते ही जाते हैं। हमारी शारीरिक ग्रैार मानसिक सम्पत्ति पैतृक सम्पत्ति है। हमारा शरीर हमारे पूर्वजों के शरीर का ही अंश है; इस लिए हमारी सज्ञानता ग्रैार अहन्ता आदि की सारी सामग्री भी हमारे पिता, पितामह आदि की सज्ञानता ग्रैार अहन्ता ही का अंश है। यह अंश बराबर, इसी प्रकार, चला जायगा। अपने पूर्वजों से सज्ञानता का अत्यल्प अंश पाकर हम प्रकृति की सर्वव्यापी सज्ञानता से उसकी वृद्धि कर सकते हैं। प्रकृति में महत्, बुद्धि, अहन्ता आदि अखण्ड भण्डार भरा पड़ा है; उससे हम यथाशक्ति अपनी आवश्यकतायें पूरी कर सकते हैं। इस सृष्टि में बहुत बड़ी मानसिक शक्ति इकट्ठी है जिससे हम सर्वदा थोड़ी बहुत लेते ही रहते हैं। परन्तु बात यह है कि इन शक्तियों का बीज पूर्वजों से मिलना चाहिए। बिना माता पिता से इनका बीज पाये हम इन शक्तियों की वृद्धि प्राकृतिक शक्तियों की सहायता से नहीं कर सकते। परम्परा से जो नियम चला आता है उसके अनुसार माता पिता के द्वारा आत्मा को अपेक्षित सामग्री दे दी जाती है। इस सामग्री से वह मनुष्य की मनमानी रचना कर सकता है।

इस रीति में, इस प्रणाली में, कितने ही विकास, कितने ही सङ्कोच ग्रैार कितनेही फेर फार होते हैं। जो कुछ हम देखते हैं सब प्रकृति के विकास से उत्पन्न हुआ है। उसमें अनेक फेर फार होकर, अन्त में, वह सब फिर प्रकृति हो को लैाट जायगा। वह उसीमें लीन हो जायगा।

कस्तूरी-मृग।



कस्तूरी अत्यन्त सुगन्धित वस्तु है। जितनी सुगन्ध कस्तूरी में होती है उतनी ग्रैार किसी वस्तु में नहीं होती। पहले तो अच्छी कस्तूरी मिलतीही नहीं ग्रैार जो मिलती भी है तो बहुत मँहगी मिलती है। कस्तूरी हिरन की नाभि में उत्पन्न होती है। जिस हिरन की नाभि में वह उत्पन्न होती है उसे कस्तूरी-मृग कहते हैं।

कस्तूरी-मृग हिमालय पहाड़ को छोड़कर ग्रैार कहीं नहीं पाया जाता। वहां पर भी वह उन्हीं जङ्गलों में विशेष रहता है जो लगभग आठ हज़ार फुट की उंचाई पर होते हैं। उसकी पीठ का रङ्ग

भूरा और पेट का सफ़ेद होता है। उसके शरीर का पिछला भाग अगले भाग से अधिक भूरा, अर्थात् कालापन लिए, होता है। कस्तूरी-मृग तीन फुट लम्बा और दो फुट ऊँचा होता है। उसके कान लम्बे और सिर छोटा होता है। उसके पैर बहुत पतले होते हैं। कस्तूरी-मृग के ऊपर के दो दांत बहुत बड़े होते हैं; वे नीचे को बढ़ते हैं और मुंह के दोनों ओर निकले रहते हैं। उसकी पूंछ एक इञ्च से अधिक लम्बी नहीं होती। जो मृग छोटे होते हैं उनकी पूंछ बहुधा दिखलाई तक नहीं देती। बड़े होने पर कस्तूरी-मृग की पूँछ अच्छे प्रकार दिखलाई देती है; उसमें बालों का एक गुच्छा निकल आता है। ऐसेही मृगों की नाभि से कस्तूरी निकलती है।

कस्तूरी-मृग की मादी कभी कभी एक और कभी कभी दो बच्चे देती है। जून अथवा जुलाई महीने में, सालभर में एकही बार, वह जनती है। कस्तूरी-मृग के बच्चों के विषय में एक बात बहुत ही आश्चर्य की है। वह यह कि जब मादी दो बच्चे देती है तब वह दोनों को एकही पास नहीं रहने देती; एक को एक जगह और दूसरे को दूसरी जगह रख आती है; परन्तु दूध दोनो को यथा समय पिलाती है। कस्तूरी-मृग के बच्चे बस्ती में नहीं जीते। चाहे कोई उनको जितनी अच्छी तरह से रक्खे; और गाय अथवा बकरी का दूध पिला-कर जिलाने का चाहे जितना प्रयत्न करे; परन्तु तिस पर भी वे नहीं जीते। सुनते हैं, कस्तूरी-मृग को पालने का अनेक लोगों ने यत्न किया; परन्तु उनका परिश्रम निष्फल गया। इस मृग को पालने से यदि वह कुछ दिन जीता भी है तो अन्धा हो जाता है। जान पड़ता है, सदैव पहाड़ के ऊपर घने जङ्गलों में रहने के कारण बस्ती का जलवायु उसे हानि पहुँचाता है।

कस्तूरी-मृग, दिनभर, अपने रहने के स्थान में पड़ा रहता है। सन्ध्या होते ही वह बाहर निकलता है और रात भर में जो कुछ उसे मिलता है, उसे खाकर प्रातःकाल फिर वह अपने स्थान को लौट जाता है। छलांग मारने में यह मृग बहुत ही प्रवीण होता है; और जब दौड़ता है तब सीधाही दौड़ता है। पहाड़ की चोटियों पर वह निर्भय दौड़ा करता है; उसका पैर कभी नहीं फिसलता। वेग में आकर जब वह दौड़ता है तब उसकी एक एक छलांग पचास पचास साठ साठ फुट की होती है। जिस समय शिकारी उसे घेर लेते हैं, उस समय, भागने में, वह हवा से बातें करता है। पहाड़ों के एक कगार से दूसरे कगार पर वह तीर के समान जाता है और शिकारी उसे देखते ही रह जाते हैं। कस्तूरी-मृग के समान शीघ्र दौड़ने वाला जीव दूसरा नहीं है।

कस्तूरी-मृग की नाभि में कस्तूरी उत्पन्न होती है; वह नर ही के नाभि में होती है; मादी की नाभि में नहीं। मांस और चमड़े के बीच में एक थैली सी होती है; उसी में कस्तूरी भरी रहती है। उसके ऊपर चमड़े के कई परत रहते हैं। कस्तूरी के कण होते हैं और प्रत्येक कण बन्दूक के छर्रे के बराबर होता है। जब कस्तूरी नाभि से निकाली जाती है तब उसका रङ्ग कम काला होता है; परन्तु धीरे धीरे वह गहरा काला हो जाता है। जो मृग तरुण होने पर मारे जाते हैं, उनकी नाभि से लगभग आधी छटांक के कस्तूरी निकलती है। कम उमर के मृगों की नाभि में कस्तूरी भी कम निकलती है।

कस्तूरी ही के लिये इस मृग का शिकार किया जाता है। कोई कोई पहाड़ी लोग कुत्तों की सहा-यता से इसे पकड़ते हैं और कोई कोई जाल लगा कर उसमें इसे फाँसते हैं। इसे पकड़कर वे मार डालते हैं और पेट से कस्तूरी निकाल लेते हैं। नाभि के भीतर कस्तूरी की जैसी थैली निकलती है वैसी ही नक़ली थैली बनाकर कोई कोई उसके भीतर कुछ काला काला पदार्थ भर देते हैं और ऊपर से कस्तूरी का लेप लगाकर उसे कस्तूरी के

नाम से बेचते हैं; यहां तक कि पीने को तम्बाकू तक उसके भीतर भरी हुई पाई गई है। इस प्रकार की झूठी कस्तूरी बहुधा बिकने आया करती है। इसलिये मनुष्यों को उसे लेने में सावधान रहना चाहिए।

पूर्वी हिन्दी।

सरस्वती की किसी पिछली संख्या में हम डाकृर ग्रियर्सन की हिन्दी-विषयक पुस्तक-माला का ज़िकर कर चुके हैं। इस पुस्तक-माला के एक एक खण्ड धीरे धीरे प्रकाशित हो रहे हैं। इसकी पांचवी जिल्द के दूसरे खण्ड में उड़िया और बिहारी भाषा (बोली) का वर्णन है; और उसके नमूने हैं। बिहारी बोली पुरानी प्राकृत-मागधी-की कन्या है। पर आज कल की हिन्दी से भी उसका बहुत साम्य है। अतएव इस प्रान्त के भाषा-प्रेमियों के भी जानने योग्य बहुत सी बातें उसमें हैं।

इस समय डाक्टर साहब की इस पुस्तकमाला की छटी जिल्द हमारे सामने है। इसमें पूर्वी हिन्दी का हाल है और उसके ५८ नमूने हैं। कोई कोई नमूना बहुत ही मज़ेदार है। वह इतना मनोरञ्जक है कि उसे पढ़ कर हँसी रोके नहीं रुकती। ये नमूने बिलकुल देहाती बोली में दिये गये हैं। जो बोली देहात में स्त्रियां और अपढ़ आदमी बोलते हैं उसीके नमूने इसमें एकट्ठा किये गये हैं। जो कहानियां देहाती स्त्रियां शाम के वक्त, आग के पास बैठ कर, अपने लड़के लड़कियों को सुना कर उनको ख़ुश करती हैं उनके कई नमूने इसमें बहुत ही अच्छे हैं।

डाकृर ग्रियर्सन ने हिन्दू-आर्य भाषाओं की एक मध्यवर्ती शाखा मानी है। उसी शाखा का नाम आपने पूर्वी हिन्दी रक्खा है। पुरानी अर्द्ध-मागधी को आपने पूर्वी हिन्दी की मां माना है। पटना प्रान्त की पुरानी भाषा मागधी और मथुरा प्रान्त की पुरानी भाषा सौरसेनी कहलाती है। इन दोनों के मेल से बनी हुई भाषा अर्द्धमागधी है। इसीने पूर्वी हिन्दी को पैदा किया है। डाकृर साहब ने इस पूर्वी हिन्दी के तीन भाग माने हैं—अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी। जिस प्रान्त में जो बोली अधिकता से बोली जाती है उसीके अनुसार उसका नाम रक्खा गया है।

पूर्वी हिन्दी नीचे लिखी हुई जगहों में बोली जाती है—

(१) अवध में—हरदोई और फ़ैज़ाबाद के कुछ हिस्से छोड़ कर।

(२) युक्त प्रान्त में—बनारस और हमीरपुर के बीच में।

(३) पश्चिमोत्तर बुंदेलखण्ड, बघेलखण्ड और छोटा नागपुर में।

(४) मध्य-प्रदेश में—छत्तीसगढ़ तथा जबलपुर और मंडला के ज़िलों में।

यह भाषा जिन खण्डों में बोली जाती है उनकी लंबाई कोई ७५० मील, चौड़ाई २५० मील और क्षेत्रफल १८७,५०० वर्ग मील है। कितने आदमी कौन बोली बोलते हैं, इसका हिसाब नीचे है—

अवधी	...	...	१६,०००,०००
बघेली	...	...	४,६१२,७५६
छत्तीसगढ़ी	...	...	३,७५५,३४३
	कुल जोड़	...	२४,३६८,७९९

योरप में हंगरी, पोर्चुगल और बलगेरिया नाम के तीन छोटे छोटे देश हैं। अवधी बोलनेवालों की संख्या हंगरी के निवासियों की संख्या के; बघेली बोलनेवालों की संख्या पोर्चुगल के निवासियों की संख्या के; और छत्तीसगढ़ी बोलनेवालों की संख्या बलगेरिया के निवासियों की संख्या के लग भग है। योरप में आस्ट्रिया एक

बहुत बड़ा देश है। मर्दुमशुमारी से सिद्ध है कि पूर्वी हिन्दी के कुल बोलने वालों की संख्या आस्ट्रिया के निवासियों से अधिक है। कुछ ठिकाना है। इस देश के छोटे छोटे प्रान्तों में योरप के कई देश समा जाते हैं!

अवधी का नाम बैसवारी भी है; क्योंकि बैसवारे ही में यह सबसे अधिक बोली जाती है। जिस प्रान्त में बैस शाखा के क्षत्रिय अधिक रहते हैं उसका नाम बैसवारा है। लखनऊ, रायबरेली और उन्नाव के ज़िलों में इस शाखा के क्षत्रियों की अधिकता है। डाक्टर साहब ने फ़तेहपुर का भी नाम दिया है; परन्तु हम अपने अनुभव से कह सकते हैं कि बैसवारे की और फ़तेहपुर की बोली में अन्तर है। पर व्याकरण सब कहीं का प्रायः एक ही है। अवध की बोली में जिन्होंने आज तक कविता की है उनमें तुलसीदास का नम्बर सबसे ऊपर है। तुलसीदास को ग्रियर्सन साहब बहुत बड़ा ग्रन्थकार मानते हैं। उनकी राय है कि किसी समय दुनिया भर के आदमी एक मत होकर तुलसीदास का नाम उसी रजिस्टर में लिखेंगे जिसमें कि जगत् के सबसे बड़े कवि और ग्रन्थकारों का नाम दर्ज है। इसमें कोई सन्देह नहीं। हम भी ऐसाही समझते हैं। हमारी भी यही राय है। इस बोली में जितनी पुस्तकें लिखी गई हैं और जितनी कविता हुई है न तो उतनी पुस्तकें ही हिन्दी भाषा-भाषियों की और किसी बोली में लिखी गई हैं और न उतनी कविता ही हुई है। कई अंगरेज़ और फ़रासीसी ग्रन्थकारों ने इस बोली पर प्रबन्ध लिखे हैं।

बघेली का माहात्म्य अवधी की अपेक्षा बहुत कम है। उसमें अच्छी अच्छी जितनी पुस्तकें बनी हैं सब प्रायः रीवां में बनी हैं। रीवां के ही दरबार में विद्वानों और कवियों का आदर अधिक होता रहा है। १५६३ ईसवी में प्रसिद्ध तानसेन महाराजा रामचन्द्र के यहां थे। असनी के हरिनाथ का भी इस दरबार में ख़ूब सम्मान हुआ था। महाराजा विश्वनाथ सिंह स्वयं अच्छे कवि थे; इस लिये कवियों और पण्डितों की उन्हें बड़ी चाह थी। उनका बनाया हुआ आनन्द-रघुनन्दन नाटक प्रसिद्ध है। महाराजा रघुराज सिंह ने तो काव्य-प्रियता में सबसे अधिक नाम पाया। उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं। उनका ज़िकर सरस्वती में हो चुका है। उनका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ आनन्दाम्बुनिधि नामक भागवत पुराण का अनुवाद है। एक पादरी साहब ने बाइबिल का अनुवाद बघेली बोली में किया है। पादरी केलाग ने भी अपने हिन्दी व्याकरण में इस बोली के विषय में कुछ लिखा है।

छत्तीसगढ़ी बोली की कई शाखायें हैं। जङ्गली अनार्य भी आर्यों की बोली बोलने लगे हैं। परन्तु इस प्रयत्न में वे अच्छी तरह कामयाब नहीं हुए। उनकी बोली आर्य और अनार्य बोलियों की खिचड़ी हो गई है। बिंझवारी, भुलिया और बैगानी आदि बोलियां उनमें मुख्य हैं। छत्तीसगढ़ी में नाम लेने योग्य भाषा-साहित्य नहीं है। वहां के प्रसिद्ध प्रसिद्ध गीत और क़िस्सों को बाबू हीरालाल काव्योपाध्याय ने अपने व्याकरण में लिखा है। यह व्याकरण छत्तीसगढ़ की बोली का है।

डाकृर साहब ने बोलियों के जो नमूने दिये हैं उनमें से बैसवारे की बोलियों के नमूनों को हमने ध्यान से देखा। हमारी जन्मभाषा बैसवारी ही है। इसीलिए हमने औरों की अपेक्षा उसीके नमूनों का विशेष विचार किया। इससे हमारा यह सिद्धान्त हुआ कि जिन लोगों ने डाकृर साहब को ये नमूने भेजे हैं या तो उनका इस प्रान्त से बहुत ही कम सम्बन्ध था, या उन्होंने ठीक ठीक नमूने एकत्र करने की ओर यथोचित ध्यान ही नहीं दिया। क्योंकि इन नमूनों में फ़रक जान पड़ता है।

जिस बोली के ये नमूने हैं उसे लोग ठीक वैसा नहीं बोलते। सम्भव है, इस प्रकार की गड़बड़ और बोलियों के नमूने देने में भी हुई हो। हमारा इतना सौभाग्य कहां कि इस लेख को परम

विद्वान् डाकृर ग्रियर्सन साहब देखें। वे न सही, श्रौर ही लोग शायद इस पर विचार करें। श्रतएव हम बैसवारी बोली के एक श्राध नमूने की श्रालोचना करना चाहते हैं।

श्रवधी बोली देहात में कई प्रकार के श्रक्षरों में लिखी जाती है। उन श्रक्षरों का सर्वसाधारण नाम कैथी है। परन्तु सब श्रक्षर एक से नहीं होते। उनमें श्रक्सर थोड़ा बहुत भेद होता है। श्रतएव डाकृर साहब को चाहिए था कि उन सब लिपियों के भी नमूने वे इस पुस्तक में देते। गोंडा ज़िले की एक लिपि का जो नमूना उन्होंने दिया है वह काफ़ी नहीं। ऐसे कितने ही नमूने इस लिपि के हैं। श्रौर श्रौर भाषाश्रों की प्रायः सभी लिपिश्रों के नमूने श्रापने श्रौर श्रौर जिल्दों में दिये हैं। पर नहीं मालूम श्रवधी श्रौर बुन्देलखण्डी के दे। चार नमूने श्रापने क्यों नहीं दिये? शायद मिलेही न हों। या उनके लिए कोशिश ही न की गई हो। या किसीने श्रापसे कह दिया हो कि श्रौर कोई नमूने ही नहीं हैं। ख़ैर।

डाकृर साहब कहते हैं कि रायबरेली ज़िले में वही बोलो बोली जातो है जो प्रतापगढ़ ज़िले के पश्चिम में बोली जाती है। फ़रक़ इतना ही है कि रायबरेली की बोली में उर्दू के शब्द श्रौर महाविरे श्रधिक हैं; क्योंकि यह ज़िला लखनऊ से मिला हुश्रा है। डाकृर साहब की इस राय से हम सहमत नहीं। रायबरेली का जो भाग प्रतापगढ़ से मिला हुश्रा है उसकी बोली में विशेष श्रन्तर नहीं है। परन्तु रायबरेली ज़िले के श्रौर भागों की बोली पश्चिमी प्रतापगढ़ की बोली से बहुत श्रधिक भेद-भाव रखती है। रायबरेली बैसवारे का केन्द्र है। इससे साहब को चाहिए था कि यहां की बोली के विषय में वे श्रधिक छान बीन करते। ज़िले के हाकिमों ने न मालूम किस श्राधार पर उन्हें लिख दिया कि प्रतापगढ़ श्रौर रायबरेली की बोली प्रायः एक सी है। हम श्रपने घर में रायबरेली की बोली कोई ३७ वर्ष से बोलते हैं। श्रतएव हम श्रपने तजरुबे श्रौर श्रपनी निज की गवाही के श्राधार पर कह सकते हैं कि डाकृर साहब की राय सही नहीं है। डाकृर साहब को इस विषय में इतना भ्रम हो गया है कि उन्होंने रायबरेलो, श्रर्थात् बैसवारी बोली के केन्द्रस्थल, का एक भी नमूना देने की ज़रूरत नहीं समझी। पश्चिमी प्रतापगढ़ की जिस बोली को उन्होंने रायबरेली की भी बोली बतलाई है उसका उन्हीं का दिया हुश्रा नमूना नीचे दे कर हम उसके बराबर बराबर उसका सही रूप देते हैं। पाठक देखलें कि दोनों में कितना श्रन्तर है।

प्रतापगढ़ के पश्चिम की श्रवधी बोली का नमूना।

याक घरे-माँ कथा कही जात-रही। पण्डित* जैान कथा कहत रहेँ सगरे गाँव–का न्योतिन–रहै। सुनवैयन–माँ याक श्रहिरैा श्रावत–रहै। ऊ कथवा सुनतीँ बेरा रवावा बहुत करै श्रौ पण्डितैा वहि–का प्रेमी जान कै वहि-का नीकी तना बैठावैं श्रौ खूब खातिर करैं। याक दिना पण्डितैा पूँछिन कि राउत तूँ रवावत बहुत हैा तुम–का काउ समुझ परत–है। तैा श्रहिरवा श्रौरैा सेवाइ रवावै लाग श्रौ कहिस कि महराज मोरे याक भैंसि

रायबरेली की बोली का नमूना।

याकन के घरमाँ कथा होति रहै। उन गाँव भरे का न्यौता दीन रहै। सुनवैयन माँ एकु श्रहिरैा रहै। कथा सुनै की बेरिया वहु रवावा बहुत करै। जी पण्डित कथा बाँचति रहैं उइ वहिका प्रेमी जानि कै निकी तना वैठावैं श्रौ खुब खातिर करैं। याक दिन पण्डित पूँछेन कि भगानि भाई तुम यतना रवावति काहे का हैा। तुम का का जानि परत है। यह सुनि कै श्रहिरवा श्रौरैा ज्वार ज्वार रवावै लाग। वह ब्वाला कि महराज मोरे एकु भैँसि

* यह ग़लत है। पण्डित न्योता नहीं देता; जिसके यहां कथा होती है वह देता है।

बिग्रान रही। कुछ बगद् गवा ग्रौ ऊ बहुतै बेराम हुइ-गै ग्रौ पड़ोना-का नेकचाइ न देत रहो। तौ पड़ौना दिना भर चिच्यान ग्रौ साँझों जूनी मरगा। तौन पण्डित वहै को नाईं तु हूँ दिना भे चुकरत-रहत-हौ। मैं-का डेर लागत-है कि कतहूँ तुहूँ न ग्रोकरी नाईं मर जा।

बियानि रहै। वह नजरराय गै ग्रौ पड़ौना का नगच्याय न देइ। पड़ौना दिन भरि चिल्लान ग्रौ सँझलो जून मरिगा। वही की तना पण्डित तुमहूँ दिन भरि चिल्लाति हौ। यहि ते महिँका डेरु लागत है कि कतौं तुमहूँ ना वही को नाहिंत मरि जाव।

इससे यह साफ़ ज़ाहिर है कि जो नमूना साहब ने दिया है उससे रायबरेली को बोलो नहीं मिलतो। पिछलो बोली का तरीक़ा ही जुदा है—उसमें 'उ' ग्रौर 'वा' को बहुत ग्रधिकता है। उर्दू के शब्द उसमें एक ही दो हैं; सो भी ग्रपभ्रंश के रूप में।

यही दशा लखनऊ के ज़िले की बोली की भी है। उसके नमूने साहब ने हिन्दो लिपि में नहीं दिये, क्योंकि वे उर्दू में लिखा कर साहब के पास भेजे गये थे। ग्रापने उनका रूपान्तर ग्रंगरेज़ी लिपि में ही दे कर सन्तोष किया है। पण्डित श्यामविहारी मिश्र लखनऊ ज़िले के रहनेवाले हैं। साहब के दिये हुए एक नमूने को ग्रब 'मिश्रजी के' नमूने से मिलाइए—

लखनऊ की (ग्रौर बाराबंकी को भो) ग्रवधी बोली का नमूना (डाक्टर साहब का दिया हुग्रा)

याक गांव मा याक लम्बरदार-के नान्ह-सारो बिटीवा रहै। जब व-की उमर सोरह सतरह बरिस-के भै, वह जून लम्बरदार-का वह-के बियाह-की फिकिर बाढ़ी। वह बेरिया नाऊ बाम्हन-कै बोलाय-कै लड़िकवा-का ढूढ़ै पठयन। थोड़े दिनन-मा याक लड़िका मिला। वह के साथ बिटीवा-कै बनावन्त बना, ग्रौर बाम्हन पूछा गवा, ग्रौर बियाह की तैयारी भै। लड़िकवा-कै बाप ग्रावा ग्रौर लेय देय के पाछे बत-कहाव होय लाग। हज़ार रुपैया बहुत कहे सुने तै-भवा। तब लम्बरदार राजी—खुशी—से घर गे ग्रौर बरात—कै दिन बदा—गा। दुलहा—कै बाप पन्दरह हजार सवाग लै—कै बड़ी धूम-धाम से दुलहिन—के घरे ग्रावा ग्रौर द्वारे-चार होय लाग। होम दच्छिना—के मागे—मा पण्डित-से तकरार भै, लाठी चलै लाग। बहुत मनई दूनो कैत घायल भयन। तब बरात रिसाय चली। वही समय-मा गाव—के भले-मानुस यकट्ठा-होइ-कै बरात मनाय—लायन। चौथे दिन बियाह भवा ग्रौर भात बढ़ार

लखनऊ की ठीक ग्रवधी बोली का नमूना। (पण्डित श्यामविहारी मिश्र का दिया हुग्रा)

याक गांव मैं याकै लम्बरदार के नान्हिसरी बिटिया रहै। जब वहिकी उमिरि स्वारा सत्रह बर्स कि भै तब लम्बरदार क वहि के बियाह कि फिकिरि बाढ़ी। वहे बेरिया नाऊ बाँमन क बोलाय क लरिका ढूँढ़ै पठइनि। थोरे दिनन में एकु लरिका मिला। वहि से विटेवा क बनाबन्तु बना ग्रौरु बाँमनु पूँछा ग ग्रौ बियाहे कि तयारी भै। लरिका क बापु ग्रावा ग्रौ लेय देय क बतकहाव होय लाग। हज़ार रुपया बहुतु कहे सुने ठीक भ। तब लम्बरदार राजो खुसीते घरै गे ग्रौ बरात क दिनु बदा ग। दुलहा क बापु पन्द्रह हजार बराती लैकै बड़ी धूम धाम ते दुलहिनि के घरै ग्रावा ग्रौरु दुवारे कि चारु होय लागि। होम दच्छिना के मांगै मैं पण्डित से तकरार ह्वै गै ग्रौ लाठो चलै लागि। बहुत मनई दूनौं कैती घायल भे। तब बरात रिसाय चली। वहे बेरिया गाँव के भले मानुस यकट्ठा ह्वै कै बरात मनाय लाये। चौथे दिन बिवाहु भ ग्रौ

खुसी-से खायन; श्रौर बिदा-होय-कै श्रपने घर श्रायन।

बराती ल्वाग भातु बढ़ार खुसी ते खाइनि श्रौ बिदा ह्वै कै श्रपने घरै श्राये।

ईश्वर करै यही दशा श्रौर श्रौर बोलियों की भो न हुई हो। परन्तु इसमें डाकृर साहब का दोष कम है। जैसे नमूने उनको मिले वैसे उन्होंने दे दिये। श्रधिक दोष ज़िले के श्रफ़सरां श्रौर नमूना भेजनेवालों का है। मुमकिन है, इस ऊपर के नमूने की बहुत सी ग़लतियां फ़ारसी लिपि के कारण हुई हों। "लागि" में नीचे ज़ेर के छुट जाने से "लाग" हो जाना कोई बात ही नहीं।

डाकृर ग्रियर्सन ने लखनऊ ज़िले की बोली के दो नमूने दिये हैं। ऊपर का नमूना जहां का है वहीं पण्डित श्यामविहारी जी का घर है। श्रतएव उनका नमूना डाकृर साहब के नमूने से ज़रूर अधिक प्रामाणिक है। डाकृर साहब के नमूने में शब्द ग़लत हैं; वाक्य ग़लत हैं श्रौर वाक्यों का क्रम भी ग़लत है। जिस प्रान्त का नमूना है उसमें "सवांग" शब्द बोलाही नहीं जाता। "वह के साथ बिटीवा कै बनाबन्त" पहलेही बन गया; "ब्राह्मण पूछा गवा" उसके बाद! "श्रौर वियाह की तय्यारी" पहलेही हो गई; लेन देन की बात का फ़ैसला हुश्रा पीछे! न मालूम किसने ऐसी उलटी सीधी बातों से भरा हुश्रा बे सिर पैर का नमूना भेजा है। डाकृर साहब तो हिन्दुश्रों के रस्म जानते होंगे। उनको चाहिये था कि वे ऐसी बे-तरतीबवार श्रोर बेहूदा बातें नमूने में न श्राने देते। जो विवाह १०००) में ठहरता है भला उसमें कहीं १५००० बराती श्राते हैं? यदि १५०००) रु० में भी कोई विवाह ठहरै तो भी शायदही इतने श्रादमी उस में श्रावैं। इस तरह का कथन एक प्रलापमात्र है। फिर कहीं लाखों में शायद एकही श्राध विवाह ऐसा होता होगा जिस में लाठी चलती हो। श्रतएव उसके ज़िकर की इस नमूने में क्या ज़रूरत थी? इसे पढ़कर विदेशियों के मन में यह सन्देह हो सकता है कि शायद हिन्दुस्तान में ऐसी ऐसी दुर्घटनायें बहुधा हुश्रा करती हों।

हमारी समझ में हिन्दुस्तान की सब बोलियों के ठीक ठीक नमूने कोई नहीं दे सकता। एक ज़िले में कई प्रकार की बोलियां बोली जाती हैं। दो दो चार चार कोस पर बोलियां बदली हैं। उनका भेद भाव कोई कहां तक बतलावैगा?

यदि कदाचित् डाकृर साहब के देखने में यह लेख श्रा जाय तो हमारी प्रार्थना है कि इस स्वल्प श्रालोचना के लिए वे हमें कृपापूर्वक क्षमा करें।

आकाशमण्डल।

[उत्तरार्द्ध]

कृष्णपक्ष की निर्मल रात में देखने से श्राकाशमण्डल में श्रनेक चमकते हुए पदार्थ देख पड़ते हैं। वे साधारणतः तारा, नक्षत्र या ग्रह कहलाते हैं। तारागण दो प्रकार के हैं—एक स्थिर तारे, दूसरे ग्रह। स्थिर ताराश्रों में यह विशेषता है, कि वे, श्राकाशमण्डल में, जड़े से रहते हैं। यदि भिन्न भिन्न तारागणों के मध्य सीधी रेखायें मिलाकर रेखागणित-सम्बन्धी चित्र बनाये जायँ तो यह देखा जाता है, कि ये चित्र सैकड़ों वर्ष तक यथातथ्य बने रहते हैं। श्रर्थात् इनकी स्थिति में कभी कुछ श्रन्तर नहीं पड़ता। ग्रह स्थिर नहीं हैं; ये तारागणों के मध्य से श्रपने स्थान सर्वदा परिवर्तित करते रहते हैं। ग्रहों को छोड़कर श्राकाश में श्रपने स्थान परिवर्तन करनेवाले श्रौर भी पिण्ड हैं-जैसे चन्द्रमा, ग्रहों के उपग्रह, श्रौर पुच्छल तारे।

२। देखने में ग्रहों ग्रैार स्थिर तारात्रों में साधारणतः बहुत कम ग्रन्तर मालूम पड़ता है। एक में दूसरे की ग्रपेक्षा क्या विशेषता है? क्यों ज्योतिषी किसी के ग्रह, ग्रैार किसी को स्थिर तारा कहते हैं? यह मालूम करना कठिन सा बोध होता है। इस बात की परीक्षा के लिए कि ग्रमुक पिण्ड स्थिर है या ग्रनस्थिर, ग्राकाशमण्डल में, उसके स्थान-विशेष को, उसके ग्रास पास के दूसरे तारागणों के स्थान से, मिलाना चाहिए। यदि घण्टे दे। घण्टे किम्वा दिन दे। दिन के पश्चात् उसकी स्थिति दूसरे तारागणों की ग्रपेक्षा परिवर्तित मालूम पड़े, तो यह समझना चाहिए कि वह ग्रह है; ग्रन्यथा स्थिर तारा है। एक दूसरी भी रोति है, जिससे हम लोग, शीघ्र, बिना दिन दे। दिन ठहरे, कह सकते हैं, कि ग्रमुक तारा स्थिर ग्रह है ग्रथवा ग्रनस्थिर तारा है। यदि दूरदर्शक यन्त्र से हम किसी स्थिर तारे को बेधते हैं, तो वह ग्राकाश में केवल एक प्रज्वलित बिन्दु सा बोध होता है। चाहै दूरदर्शक यन्त्र कैसा ही उत्तमोत्तम क्यों न हो, उसका ग्राकार ज्यों का त्यों बना रहता है। किन्तु यदि इस यन्त्र को किसी ग्रह की ग्रोर हम लगाते हैं, तो उसके गोले का ग्राकार कुछ बढ़ जाता है। इससे हम लोग तुरन्त कह सकते हैं कि यह ग्रह है। पर यह बात समीपस्थ बुध, शुक्र इत्यादि पांच ग्रहों की है। दूरस्थ यूरेनस ग्रैार नेपच्यून के ग्राकार में इस यन्त्र से कुछ विशेषता नहीं देख पड़ती। इनके स्थान परिवर्तन से ही इनका ग्रह होना सूचित होता है।

३। स्थिर तारे—बिना दूरदर्शक यन्त्र के सहारे केवल पांच ग्रह, ग्रर्थात् बुध, शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति ग्रैार शनि देख पड़ते हैं। यूरेनस ग्रैार दूसरे दे। एक छोटे छोटे ग्रह बहुत ही तीव्र दृष्टिवाले पुरुष देख सकते हैं। जो ग्रैार करोड़ों तारागण हम लोगों को बिना दूरदर्शक यन्त्र के नित्य देख पड़ते हैं वे स्थिर तारा हैं।

४। तेज—तारागणों में भिन्न भिन्न दरजे की चमक है। ज्योतिषी लोग तारागणों के विभाग उनके तेज के ग्रनुसार करते हैं। १९ तारे, जो बहुत ही तेजोमय हैं, प्रथम वर्ग के कहे जाते हैं। उनमें से लुब्धक नामी तारा उत्तरोय गोलार्द्ध में सब से ग्रधिक तेजोवान है। स्वाती (Arcturus) ग्रभिजित् (Vega) ब्रह्म हृदय (Capella), रोहिणी (Aldebaran), रिजेल (Rigel), चित्रा (Spica) ग्रैार ग्रार्द्रा (Betelgeuze) भी प्रथम वर्ग के हैं। दूसरे वर्ग के तारात्रों में सप्तर्षि-तारा-पुञ्ज के ४ सबल प्रज्वलित तारे मुख्य हैं। दूसरे के बाद तीसरे, चैाथे ग्रैार पांचवे वर्ग के तारे हैं। इसी तरह, इस समय, १२ वर्ग के तारागण मालूम हुए हैं। इंञ्जिलमैन (Engelmann) साहब के ग्रनुसार पहले ९ वर्ग के तारागणों की संख्या इस प्रकार है—

प्रथम वर्ग	१९	चतुर्थ वर्ग	४९०	सप्तम वर्ग	१९९००
द्वितीय वर्ग	६५	पंचम वर्ग	१४००	ग्रष्टम वर्ग	६८०००
तृतीय वर्ग	२००	षष्ट वर्ग	४९००	नवम वर्ग	२४१०००

इससे मालूम होता है कि ज्यों ज्यों तारागणों का तेज कम होता जाता है त्यों त्यों उनकी संख्या बढ़ती जाती है। एक वर्ग के तारे ग्रपने पिछले वर्ग के तारों से लग भग २½ गुना ग्रधिक प्रकाशवान पाये जाते हैं। ग्रतएव पहले वर्ग के किसी तारे का तेज षष्ट वर्ग के तारे के तेज से १०० गुना ग्रधिक होता है। पांचवे वर्ग के तारागण बहुत ही मन्द तेज के होते हैं। छठे वर्ग के ग्रैार भी मन्द होते हैं। सप्तमवर्ग के तारागण इतने मन्द होते हैं कि उन को सिर्फ बहुत ही तीव्र दृष्टि का मनुष्य, बिना दूरदर्शक यन्त्र के, देख सकता है।

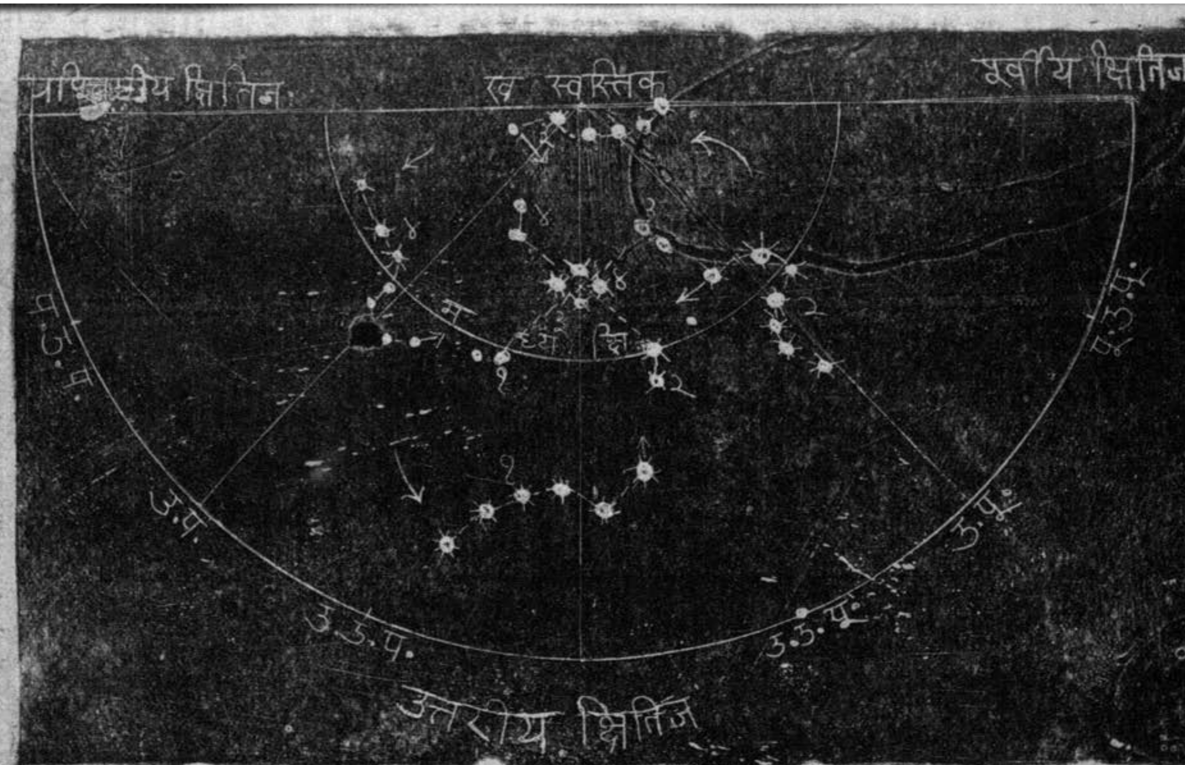
५। ग्राकाशगङ्गा—कृष्णपक्ष की किसी निर्मल रात में, ग्राकाश में इधर उधर छिटकी हुई, एक प्रज्वलित धारा देख पड़ती है। इसे ग्राकाशगङ्गा कहते हैं। इसके तेजोमय विकाश का कारण इसमें के ग्रनेक तारे हैं। उनमें से प्रत्येक तारा बहुत ही मन्द प्रकाशवाला है; किन्तु ग्रापस की समीपता से वे सब एक प्रज्वलित मार्ग से जान पड़ते हैं। दूर दर्शक यन्त्र से इसके तारे पृथक् पृथक् तथा विशेष प्रकाशित देख पड़ते हैं।

६। नक्षत्र-पुञ्ज-नवोन ज्योतिषी नक्षत्र-पुञ्जों का विभाग दूसरी रीति से भी करते हैं। कुल आकाश-मण्डल ताराओं से इस प्रकार भूषित है कि यदि प्रत्येक समूहके ताराओं को मिलाते हैं तो उनका आकार इस भूगोल-स्थित मनुष्य किम्वा और जीव जन्तुओं सा बोध होता है। इस रीति से प्रत्येक समूह के तारागण अपनो अपनी आकृति के अनुसार विशेष विशेष नाम से पुकारे जाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक पुञ्ज के अलग अलग काल्पनिक नाम रक्खे गये हैं। यथा, सप्तर्षि-समूह, ओरायन-नक्षत्र-पुञ्ज, सिंह-समूह इत्यादि।

पूर्वोक्त रीति से प्रत्येक तारा पुञ्ज बहुत अच्छो तरह अलग किया जा सकता है। पहले पुञ्ज का नाम लीजिये। फिर उस पुञ्जके प्रत्येक तारा के पहले एक अक्षर या अङ्क लगा दीजिये। इससे प्रत्येक पुञ्ज के सब तारे पृथक् पृथक् बतलाये जा सकते हैं। इस रीति से सन् १६०३ ई० में बेयर (Bayer) नामी ज्योतिषी ने खगोल का एक मान-चित्र प्रकाशित किया था। उसने नक्षत्र-पुञ्जों के प्रत्येक नक्षत्रों का नाम यूनानी वर्णमाला के अक्षरों के हिसाब से रक्खा। प्रत्येक पुञ्ज का जो सब से अधिक प्रकाशित तारा है उसका नाम उसने α (अलफा-अ) और उससे कम प्रकाशवान तारे का नाम β (बीटा-ब) रक्खा। इसी प्रकार γ, δ, इत्यादि वर्णों के अनुसार उसने नाम रक्खे। जब यूनानो वर्णमाला के वर्ण हो चुके तब लैटिन वर्णमाला के वर्णों की उसने योजना की। फिर अङ्कों की भी योजना उसने की। नागरीप्रचारणी सभा द्वारा प्रकाशित विज्ञान कोश में केवल कुछ नक्षत्रों के नाम दिये गये हैं। शेष ज्यों के त्यों रक्खे गये हैं। बहुतों का तो उनमें नाम ही नहीं पाया जाता; वे साफ़ ही छोड़ दिये गये हैं। इसका अफ़सोस है। मैं भी उनका नाम ज्यों का त्यों रहने देता हूं। पर यूनानो वर्णों की जगह मैं अ, ब, स, द इत्यादि वर्ण काम में लाने का प्रयत्न करता हूं।

७। नक्षत्र-पुञ्जों का नाम इत्यादि जानना अत्यावश्यक है। इस लिए उनका कुछ वर्णन नीचे किया जाता है।

पहले बड़े सप्तर्षि-समूह के नक्षत्रों का पहचानना कुछ कठिन नहीं है। उत्तरीय खगोलार्द्ध में इनका समूह बहुत ही सुन्दर और सुप्रसिद्ध है। चित्र १ में इनका आकार वैसा हो दिया गया है जैसा कि वह आकाश में देख पड़ता है। चित्र २ में, बड़े सप्तर्षि, छोटे सप्तर्षि और ध्रुव के भिन्न भिन्न ऋतुओं के स्थान-विशेष, आकार और गति की दिशा इत्यादि दिखलाई गई है। बड़े सप्तर्षि के अ और ब तारे ध्रुवदर्शक के नाम से प्रसिद्ध हैं। यदि ब और अ को मिलाकर एक सोधी रेखा अ की ओर इतना बढ़ाई जाय, जितना कि ब और अ के बीच की दूरी का ५ गुना होता है, तो वह सीधी रेखा ध्रुव तारा के बहुत ही पास, क्या उसी से होती हुई, जाय। चित्र २ में कहे गये तारों के भिन्न भिन्न ऋतुओं के अनुसार स्थान दिये गये हैं। इनसे सप्तर्षियों का पता, आकाश मण्डल में, शीघ्र लग सकता है। उन्हें देखकर उनके किनारे के दो तेजोमय तारों को बढ़ाकर ध्रुवतारे का पता आकाश में झट लगाया जा सकता है। यदि हम लोग रात को किसी समय, या किसो साल किसो विशेष ऋतु में, इस तारे को देखते हैं, तो यह प्रायः स्थिर ही सा पाया जाता है। घूमता यह भी है, किन्तु इसके घुमाव की परिधि आकाश के इतने सूक्ष्म भाग में है, कि उसका घूमना जान नहीं पड़ता। पर यदि हम बड़े सप्तर्षि के तारों को देखते हैं, तो इनको गति अत्यन्त आश्चर्य्यदायक देख पड़ती है। ऐसा मालूम होता है, कि मानो ये सातों तारे, एक जंज़ोर में जकड़े हुए हैं, जिसका एक छोर ध्रुव के हाथ में है और वह इन्हें अपने चारों ओर घुमा रहा है। किन्तु जहां कहीं ये जाते हैं, इनके दो ध्रुवदर्शकों का मुंह ध्रुव हो की ओर घूम जाता है।



(चित्र २)—इस चित्र में बड़े सप्तर्षि, छोटे सप्तर्षि और ध्रुव इत्यादि की उँचाई और आकार इत्यादि निम्नलिखित ऋतुओं के अनुसार दिखलाये गये हैं—

आधी रात	११ बजे	१० बजे	९ बजे	बड़े सप्तर्षि का स्थान	छोटे सप्तर्षि का स्थान	ध्रुवतारा का स्थान
२१ सितम्बर	६ अक्तूबर	२२ अक्तूबर	६ नवम्बर	१	१	१
२१ दिसम्बर	५ जनवरी	२१ जनवरी	५ फ़रवरी	२	२	२
२३ मार्च	८ अप्रेल	२३ अप्रेल	८ मई	३	३	३
२२ जून	७ जुलाई	२२ जुलाई	७ अगस्त	४	४	४

यह ध्रुव तारा, छोटे सप्तर्षि का अ तारा है। (चित्र ३) इस नक्षत्र-पुञ्ज में भी ७ तारे हैं। उनमें से ब और स बहुत (पर ध्रुव से कम) तेजोमय हैं; शेष मन्द हैं। आकाशीय ध्रुव, ध्रुवतारे के बहुत ही पास है; इसी कारण से इस तारे का नाम भी ध्रुव रक्खा गया है।

यदि बड़े सप्तर्षि के द नामी बड़े तारे को ध्रुव तारे में मिलाकर, उस सीधी रेखा को उतनी ही दूर ध्रुव तारे से आगे और बढ़ायें तो वह सीधी रेखा उस नक्षत्र-पुञ्ज की ओर पहुँचती है जो काशोपी समूह (cassiopeia) के नाम से प्रसिद्ध है (चित्र ३) अतएव बड़े सप्तर्षि और काशोपी-समूह आकाश-मण्डल में इस प्रकार स्थित हैं कि ध्रुव तारा उनके बीच में पड़ता है। इन समूहों को जब पाठक भली भांति पहचान लेंगे तब निम्नलिखित पुञ्जों के पहचानने में उन्हें बहुत सरलता होगी।

पूर्व भाद्रपद नामक नक्षत्र-समूह वर्गाकार है (चित्र ४) बसन्त और ग्रीष्म ऋतु में तो यह नहीं देख पड़ता किन्तु शरद और हिमर्तु में यह पुञ्ज सायङ्काल देख पड़ता है। बड़े सप्तर्षि के अ और द नामी तारों को ध्रुव से मिला कर यदि हम दो सीधी रेखायें खींचें तो ध्रुव से जितनी दूर काशोपी समूह है उससे उतनी ही दूर आगे हट कर इन दोनों सीधी रेखाओं के भीतर पूर्वभाद्रपद नक्षत्र-पुञ्ज का वर्ग-क्षेत्र आजाय और ये दोनों सीधी रेखायें उक्त समूह के वर्ग के ब और उत्तरभाद्रपद के अ नामी तारों को स्पर्श करें (चित्र ४)

पूर्व भाद्रपद के वर्ग-क्षेत्र के तीन कोनों पर तो उसी पुञ्ज के अ ब और स तारे हैं। किन्तु चौथे कोने पर उत्तर भाद्रपद का अ नामी तारा है। इस उत्तर भाद्रपद-पुञ्ज के ब और स तारे उसी पुञ्ज के अ से थोड़े ही अन्तर पर हैं (चित्र ४) उत्तर भाद्रपद पुञ्ज के यदि ब और स को मिला कर सीधी रेखा ब स को स की ओर बढ़ावें तो वह परसेयस (Perseus) समूह के अ तारे से जा मिलती है। परसेयस-समूह के स और द तारे अ के इधर उधर हैं।

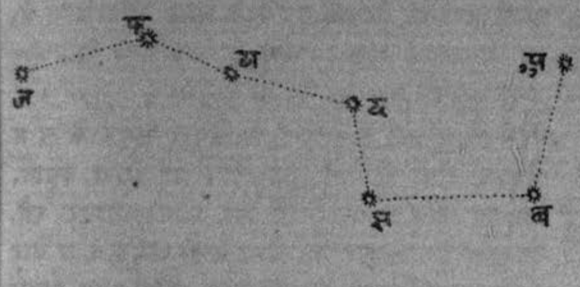
परसेयस-समूह के अ, उत्तर भाद्रपद-पुञ्ज के अ ब और स तथा पूर्व भाद्रपद के अ ब और स तारों को भली भांति पहचान लेने से निम्न लिखित दूसरे समूह पहचाने जा सकते हैं।

परसेयस-समूह के अ स और द नक्षत्र मिल कर एक ऐसा चाप बनाते हैं जो यदि उसी आकार में कुछ दूर बढ़ाया जाय, तो प्रजापति-समूह के अ नामी तारे से जो ब्रह्महृदय के नाम से प्रसिद्ध है, जा मिलता है। इस चाप के उन्नतोदर की ओर उसी पुञ्जका ब तारा है, जो अलगो (Algol) के नाम से प्रसिद्ध है। यदि परसेयस-समूह के स अ और द तारों से बने हुए चाप को ऐसा बढ़ावें, कि वह चाप अलगो तारे की ओर नतोदर रहै, तो कुछ दूर जाकर वह चाप उसी समूह के य और क तारों से मिलेगा। यदि वही चाप उसी दिशा में थोड़ी दूर और बढ़ाया जाय तो वह कृत्तिका-समूह के पास से जायगा (चित्र ५)।

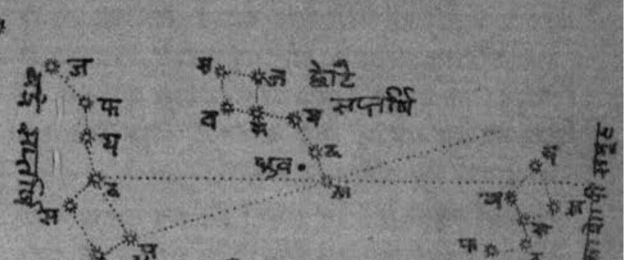
यदि ध्रुव तारे को ब्रह्महृदय से मिलाकर उसी की ओर कुछ दूर हम बढ़ाते हैं, तो वह ओरायन समूह से मिलता है (चित्र ६)। इस समूह का अ यानी आर्द्रा नक्षत्र सब से अधिक तेजोमय और रक्त वर्ण है। ओरायन-पुञ्ज का कटिबन्ध द य और क नक्षत्रों से बना है तथा इस कटिबन्ध के चारों ओर अ, स, और ल नक्षत्र मिलकर एक चतुर्भुज बनाते हैं। इन सात नक्षत्रों में अ और ब प्रथम वर्ग के और शेष द्वितीय वर्ग के ज्योतिर्मय हैं। (चित्र ६)

ओरायन कटिबन्ध के तीन नक्षत्र द, य और क यदि क की ओर बढ़ाये जायं तो कुछ दूर जा कर सब नक्षत्रों से अधिक तेजस्वी लुब्धक नक्षत्र से मिलते हैं। यह तारा बड़े श्वान-समूह (Canis major) का सब से अधिक प्रकाशमान तारा है। (चित्र ६)

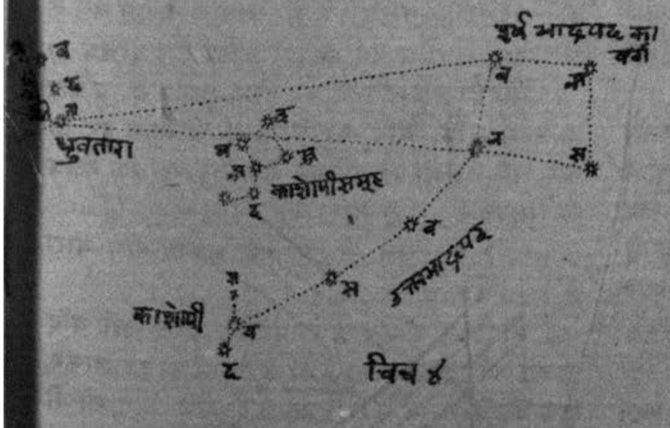
ओरायन कटिबन्ध के पूर्वोक्त तीन तारे यदि द की ओर बढ़ाये जायँ तो वे उतनी ही दूर जाकर, वृष-नक्षत्र-समूह के रोहिणी से मिलेंगे। रोहिणी भी वृष समूह का सबसे ज्योतिर्मय नक्षत्र है। (चित्र ६)



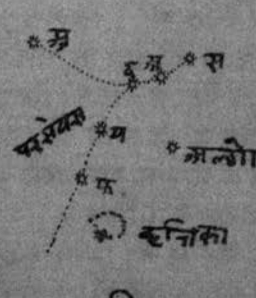
चित्र १



चित्र ३



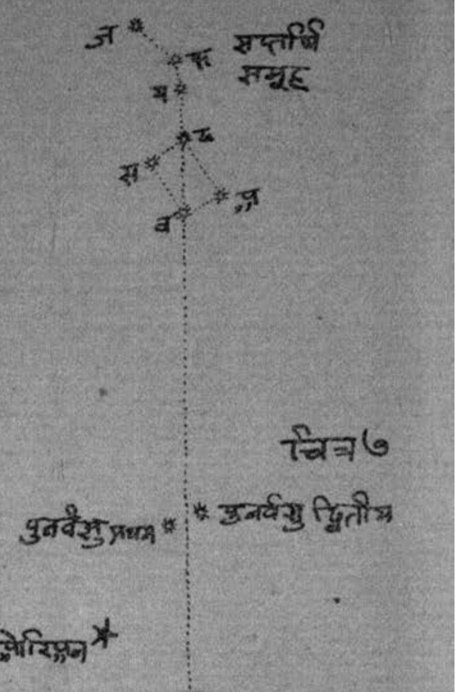
चित्र ४



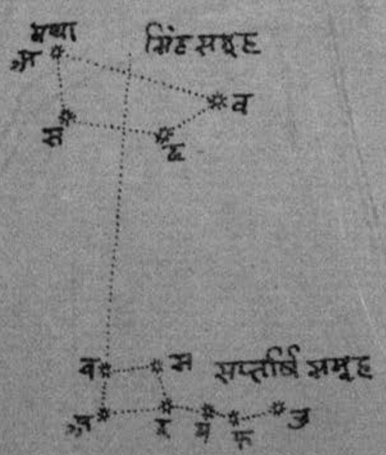
चित्र ५



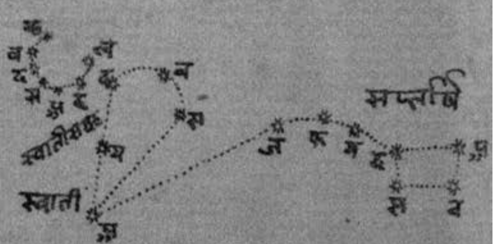
चित्र ६



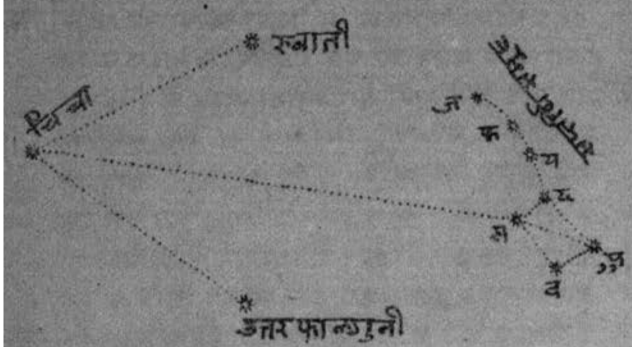
चित्र ७



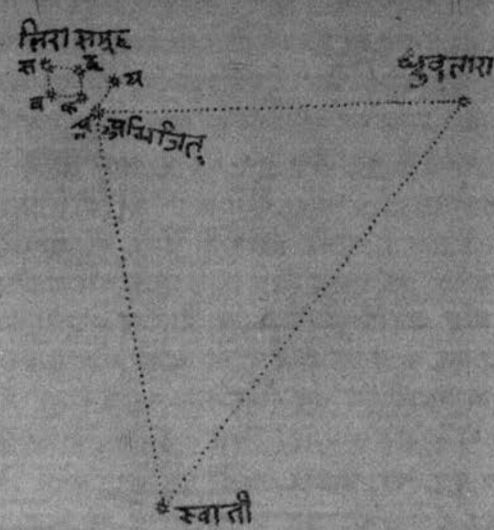
चित्र ८



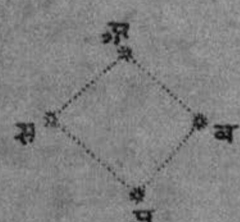
चित्र ९



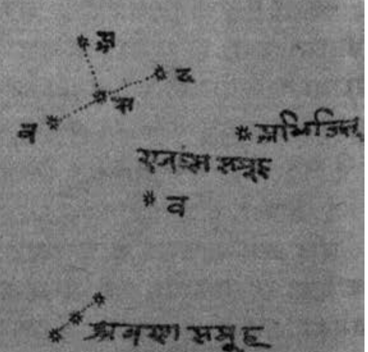
चित्र १०



चित्र ११



चित्र १२



चित्र १३

यदि सप्तर्षि के द और व नक्षत्र कुछ दूर बढ़ाये जायँ तो उनसे गई हुई सीधी रेखा मिथुन राशि के नक्षत्र-पुञ्ज पहले और दूसरे पुनर्वसु से हो कर जायगी। यदि वह सीधी रेखा आकाश-मण्डल में उसी सोध में कुछ और दूर बढ़ाई जाय तो छोटे श्वान-समूह (Canis Minor) के प्रोसियान (Procyon) नामी नक्षत्र के पास से जायगी (चित्र ७) यह नक्षत्र भी प्रभा में प्रथम वर्ग का है।

यदि सप्तर्षि-समूह के अ और व नक्षत्रों को मिला कर अ व सीधी रेखा को व की ओर उसका ५ गुना बढ़ावें तो वह सिंहस्थित नक्षत्र-समूह के मध्य से होकर जायगी (चित्र ८)। इस राशि के नक्षत्र-पुञ्ज का आकार अत्यद्भुत है। इनमें से (चित्र ८ में) ४ मुख्य नक्षत्र अ, व, स और द दिखलाये गये हैं। जिन में से अ मघा के नाम से प्रसिद्ध है। प्रभा में वह प्रथम वर्ग का है। शेष दूसरे वर्ग के हैं।

यदि सप्तर्षि के पुच्छ-भाग को चाप के आकार में उसके अधोभाग की ओर बढ़ाते हैं, तो वह प्रथम वर्ग के प्रभावान् स्वाती नक्षत्र से होता हुआ जाता है। स्वाती नक्षत्र, स्वाती-नक्षत्र-पुञ्ज का मुख्य तारा है, (चित्र ९) उसको छोड़ कर व, स, द और य भी चित्र ९ में दिखलाये गये हैं। उनमें से क, स, और द तो चतुर्भुज के कोनों पर, और य, अ, द, भुजा पर हैं।

स्वाती-पुञ्ज के समीप ही, उसके द कोने पर, तथा सप्तर्षि व, द, य और फ नक्षत्रों की सीध में, कोरोना बोरिएलिस (Corona Borealis) नक्षत्र पुञ्ज है। इस पुञ्ज के नक्षत्र अर्द्ध-वृत्ताकार हैं; उन में से सब से अधिक तेजोमय नक्षत्र दूसरे वर्ग का है। (चित्र ९)

यदि सप्तर्षि-समूह के अ और स नक्षत्रों को एक रेखा से मिलाकर एक ऐसी व अ रेखा खींचें जिसका उन्नतोदर स्वाती नक्षत्र की ओर हो तो यह रेखा कुछ दूर जा कर कन्या राशिवाले नक्षत्र-पुञ्ज के चित्रा नक्षत्र से मिलेगी। और सिंह-समूह का व अर्थात् उत्तरा फाल्गुनी, जो सिंह-पुञ्ज की पूंछ पर है, उस समत्रिबाहु त्रिभुज के उस कोने पर होगी, जिसके शेष दे। कोनों पर चित्रा और स्वाती हैं। (चित्र १०)

उत्तरीय खगोलार्द्ध में, लिरा-समूह का अभिजित् नामी नक्षत्र भी एक बहुत ही तेजोमय नक्षत्र है। यदि ध्रुव तारा और स्वाती नक्षत्र के बीच एक सीधी रेखा खींचकर उसी कर्ण पर एक समकोन समद्विबाहु त्रिभुज बनावें तो समकोन बिन्दु पर अभिजित् नामी नक्षत्र पाया जायगा। और इस पुञ्ज के शेष नक्षत्र उसी कोने के समीप हो एक समानान्तर चतुर्भुज बनाते हुए पाये जायँगे जोकि व, स, द और क हैं। य उससे कुछ हट कर द को सीध में होगा। (चित्र ११)

अभिजित् और पूर्वभाद्रपद के वर्ग-क्षेत्राकार नक्षत्र-पुञ्ज के बीच में राजहंस नक्षत्र-पुञ्ज हैं। इस पुञ्जमें ५ मुख्य तारे हैं जिन की सापेक्षिक स्थिति बड़ी ही अपूर्व है। (चित्र १२)

अन्त में श्रवण-नक्षत्र-पुञ्ज को देखिये। यदि अभिजित् और राजहंस समूह के व नक्षत्र को मिलाकर एक सीधी रेखा बढ़ाई जाय तो वह श्रवण नक्षत्र के कुछ ऊपर से हो कर जायगी।

ऊपर उत्तरीय खगोलार्द्ध के कुछ नक्षत्रों का संक्षेप से वर्णन किया गया।

जीतनसिंह।

कुमारी तरुदत्त।

विधाता के नियम कुछ ऐसे टेढ़े हैं कि वे समझ में नहीं आते। बहुधा देखा गया है कि जो लड़कपन ही से बहुत बुद्धिमान होता है, या जिसमें किसी प्रकार की विचित्रता पाई जाती है, वह बहुत काल तक इस संसार में नहीं रहने पाता। उदाहरण में आज मैं पाठकों को तरुदत्त का कुछ हाल सुनाना चाहता

हूं। सब लोग जानते हैं कि बङ्गाल की स्त्रियों का, पढ़ने लिखने में, बड़ा अनुराग है। वे अपनी भाषा के अतिरिक्त पराई भाषाएं भी सीखती हैं और उन भाषाओं में विशेष विज्ञता भी प्राप्त करती हैं। यों तो पढ़ी लिखी सुबोध स्त्रियां उन में बहुत हुई हैं; परन्तु, तरुदत्त सी विचित्र कदाचित् ही कोई हुई हो। वह केवल इक्कीस वर्ष छै महीने इस संसार में जीवित रही। परन्तु इसी बीच में उसने अङ्गरेज़ी, फ्रेञ्च और संस्कृत भाषायें बहुत अच्छी तरह सीख ली थीं। इन तीनों भाषाओं के सिवा उसमें कविता-शक्ति भी बहुत विचित्र थी। और उसकी प्रसिद्धि का कारण भी यही शक्ति हुई।



बङ्गाल में बाबू गोविन्दचन्द्र दत्त एक विख्यात पुरुष हुए हैं। वे बड़े बुद्धिमान और साहसी मनुष्य थे। स्वजाति में उनका बड़ा मान था। उनके एक पुत्र और दो कन्याएं थीं। पुत्र का नाम अब्ज, उससे छोटी बहिन का नाम अरु और सब से छोटी का तरु दत्त था। अब्ज का देहान्त १८६५ ई० में चौदह वर्ष की अवस्था में ही हो चुका था। पिता के सन्तोष के लिये केवल अरु और तरु दत्त रह गई थीं। बड़ी बहिन अरु का जन्म १८५४ में हुआ था। वह तरुदत्त से अठारह महीने बड़ी थी। सन् १८५६ के मार्च महीने की ४ तारीख़ को तरुदत्त का जन्म, कलकत्ते में, हुआ था। बाबू गोविन्दचन्द्र दत्त ने एक सुन्दर उपवन बनवाया था। उस उपवन में एक घर भी बहुत अच्छा बना हुआ था। वहां एकान्त में तरुदत्त की बाल्यावस्था विद्या सीखने में बीती। योरोपीय सभ्यता इस बात को कभी न स्वीकार करेगी कि बाल्यावस्था में एकान्त में रह कर विद्या सीखना साध्य है। किन्तु तरुदत्त सी विचित्र बालिका के लिये यह बात सर्वथा साध्य थी। बाल्यावस्थाही से तरुदत्त की प्रकृति निराली थी। एकान्त में बैठकर तरुदत्त विद्या विषयक बातों पर ध्यान दिया करती थी। उसका समय इसी में अधिक बीतता था। लड़कपन में तरुदत्त की माता कन्याओं को अनेक पौराणिक कथाएं भी सुनाया करती थी। कन्याओं के विचार भी माता के उपदेश से बहुत अच्छे हो गये थे। जब तरुदत्त १३ वर्ष की हुई तब बाबू गोविन्दचन्द्र दत्त स्वयं कन्याओं को लेकर योरप जाने को उद्यत हुए।

दत्त महाशय कन्याओं को लेकर सन् १८६९ के अन्त में योरप पहुंचे। वहां उन दोनों बहनों के पढ़ने का प्रबन्ध किसी फ्रेञ्च सहायता-प्राप्त स्कूल में किया गया। इसके बाद कन्याओं को लेकर दत्त महाशय प्रथम इटाली, पीछे इङ्गलैण्ड, को गये। दोनों बहनों ने कुछ काल तक केम्ब्रिज विद्यालय में स्त्रियों के विषय पर अच्छे अच्छे व्याख्यानों को ध्यानपूर्वक सुनकर मनन किया। अपने अन्तिम दिन तक तरुदत्त फ्रेञ्च भाषा की उत्तम ज्ञाता हो चुकी थी। वह अङ्गरेज़ी से बढ़कर फ्रेञ्च भाषा को प्यार करती थी। इसीसे अङ्गरेज़ी से फ्रेञ्च भाषा का उसको अधिक ज्ञान था। वह योग्यतापूर्वक इस भाषा को लिख पढ़ सकती थी। सन् १८७३ के नवम्बर महीने में दत्त महाशय कन्याओं को लेकर बङ्गाल लौट आये। यहां तरुदत्त के बचे हुए जीवन के चार वर्ष मानसिक चेष्टाओं और कल्पनाओं के स्वप्न देखने में बीते। उसकी कल्पना निस्सन्देह बड़ी मधुर थी जिसको वह प्रायः लेखनी द्वारा मूर्तिमान करके उसका